चन्दामामा

माँ-बच्चों का मासिक पत्र



1st July

50

8



जब अम्बा इस प्रकार सुनियों से बातें कर रही थी, तो वहाँ होत्रवाहन नाम का राजर्षि आया। मुनियों ने उनका स्वागत किया, आसन दिया। और वे फिर यथापूर्व अम्बा के बारे में बातें करने लगे। होत्रवाहन ने उनकी बातचीत से अम्बा की सारी कहानी जानी। सहसा आसन से उठकर उसने अम्बा का आलिङ्गन किया। "बेटी, मैं तेरी माता का पिता हूँ। तेरा नाना हूँ। तुम पर क्या आपत्ति आ पड़ी है, जरा मुझे विस्तार से तो बताओ।" उसने उसको आश्वासन दिया।

अम्बा ने अपना सारा वृत्तान्त होत्रवाहन को भी सुनाया। सब सुनकर उसने कहा-"बेटी, तुम्हारा पिता के घर जाना बिल्कुल उचित नहीं है। मैं तुम्हारे दुःख का निवारण करने का उपाय बताता हूँ। तुम मेरे साथ रहो। पर तुम तपस्या न कर पाओगी। तुम यह प्रयत्न छोड़ दो। जमदग्नि के लड़के, परशुराम के पास जाओ। तुम उससे कहो कि तुम्हारे साथ कैसे अन्याय किया गया है। वह जाकर भीष्म को मार देगा। इस समय परशुराम महेन्द्र पर्वत पर कठिन तपस्या कर रहा है। वह मेरा मित्र है। यह कहने पर कि मैंने तुम्हें भेजा है, वह तुम्हारी देखभाल करेगा, और तुम्हारे कष्ट दूर कर देगा। तुम उससे मिलो।"

इतने में बहाँ अकृतव्रण नाम का महर्षि आया। अकृतव्रण, परशुराम के अनुचरों में एक था। उसके आते ही सब मुनियों

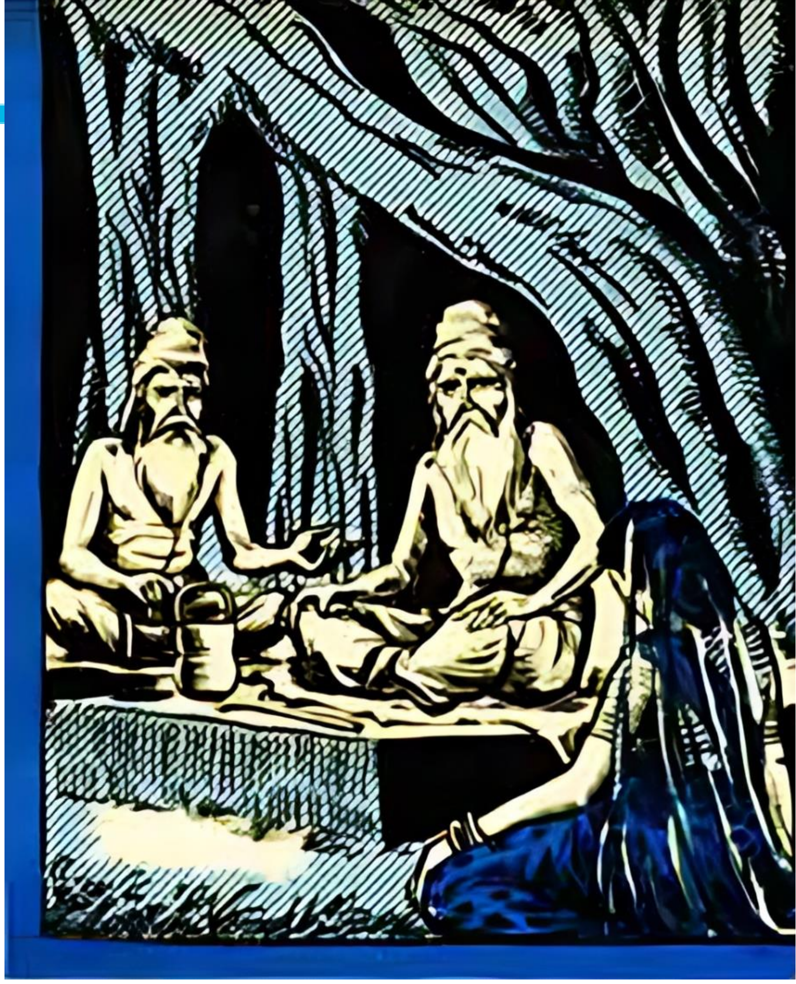
ने उसका उठकर स्वागत किया। वह बैठ गया और मुनियों से दर्शन पर बातचीत करने लगा।

उस समय, होत्रवाहन ने अकृतव्रण से परशुराम का कुशल क्षेम पूछा। "अब वे कहाँ हैं?" उसने जानना चाहा।

"वे प्रायः आपका स्मरण करते रहते हैं। आपको देखने के लिए वे यहाँ आ रहे हैं, सम्भव है कि वे कल तक पहुँच जायें। यह लड़की कौन है? क्या आपकी कोई सम्बन्धी है।" अकृतव्रण ने, अम्बा के विषय में प्रश्न किया। होत्रवाहन के अम्बा की कथा बताने पर, उसने अम्बा से कहा-"तुम्हारे कष्टों के कारक दो हैं। एक भीष्म, जो तुमको जबर्दस्ती उठा ले गया, दूसरा साल्व राजा, जिसने तुमसे विवाह करने से इनकार कर दिया। इनमें से तुम पहले किससे बदला चुकाना चाहती हो, पहले यह निश्चय करलो, फिर परशुराम से कहना अच्छा है।"

अम्बा निश्चय न कर सकी कि क्या कहे-"महात्मा, आपने भी मेरी सारी कहानी सुनी है। आप ही सोचिये कि इन दोनों को सजा देना जरूरी है या एक को ही?"

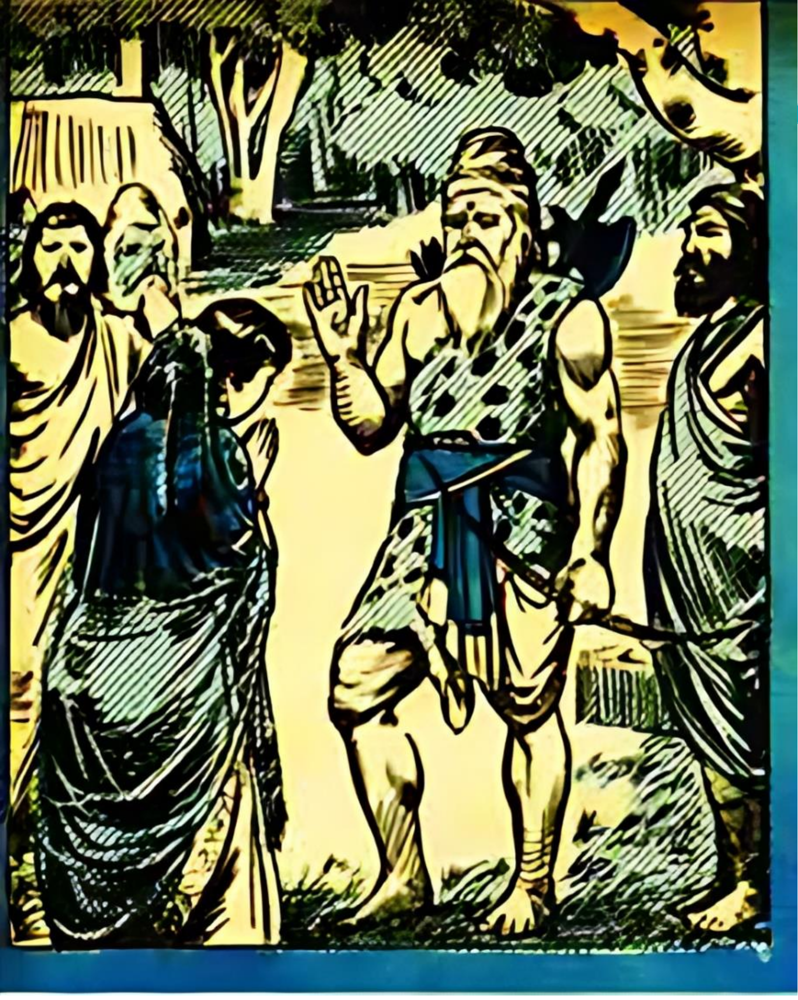
तब अकृतव्रण ने कहा-"मेरे विचार में तो भीष्म ही दोषी है। अगर



उसको परशुराम ने मार दिया, तो तेरा बदला चुक जायेगा।

अम्बा ने कहा-"मुझे भी ऐसा ही लगता है।" रातभर , आश्रमवासी, अम्बा के बारे में ही बातें करते रहे।

अगले दिन सवेरे परशुराम अपने शिष्यों के साथ आश्रम में पहुँचा। यद्यपि बह मुनि वेश में था तो भी उसके साथ बाण, तलवार, और फरसे थे। परशुराम के आने से आश्रम में तहलका-सा मच गया। जब उनका उचित स्वागत सम्मान हो गया तब होत्रवाहन ने, अम्बा को



दिखाया। उसका परशुराम से परिचय कराया।

अम्बा उसके पैरों पर पड़ी और जोर से रोते हुये उसने उसकी शरण माँगी।

"बेटी, जैसा तुम्हारे लिये होत्रवाहन है, वैसा ही मैं हूँ। बताओ, तुम्हारी इच्छा क्या है, मैं उसे पूरा करूँगा।" परशुराम ने कहा।

"महात्मा, मेरा जीवन भीष्म ने नष्ट कर दिया है। आप उसका नाश करके मेरा दुख निवारण कीजिये।" अम्बा ने कहा।

परशुराम ने कहा-"मैने प्रतिज्ञा की हुई है कि मैं ब्राह्मण रक्षा के अतिरिक्त किसी और काम के लिए शस्त्र न पकड़ूँगा। तब मैं भीष्म को कैसे मार सकना हूँ? यही नहीं, भीष्म हमेशा मेरे सेवक की तरह ही रहता है। जो मैं कहता हूँ वह करता है। इसलिये उसको मारने की कोई जरूरत नहीं है।

अम्बा को लेकर भीष्म के पास चला जाय और उसको भीष्म से विवाह करने के लिए कहा जाय और यदि यह विवाह करने से इनकार करेगा तो वह ब्राह्मण का तिरस्कार कर रहा होगा। उस हालत में वह भीष्म से युद्ध कर सकेगा। यों परशुराम ने निश्चय किया। इसका आश्रमवासियों ने समर्थन भी किया।

परशुराम ने रात आश्रम में ही काटी। अगले दिन, उन सब को और अम्बा को साथ लेकर वह कुरुक्षेत्र आया और सरस्वती नदी के किनारे उसने पड़ाव किया। कुरुक्षेत्र पहुँचने के तीसरे दिन बाद परशुराम ने भीष्म को खबर भेजी। भीष्म खुशी खुशी परशुराम को देखने आया।

"भीष्म, तुमने यह क्या किया है! तुम तो ब्रह्मचारी रहना चाहते थे। फिर काशी

राजा की इस लड़की को क्यों जबर्दस्ती उठा लाये? जब ले ही आये, तुमने उसे घर में न रखकर, साल्व राजा के पास भेज दिया और उसने इसको लेने से इसलिये इनकार कर दिया, क्यों कि तू इसे लाया था। यह तेरे कारण अनाथ हो गई है। इसलिये तुम ही इससे विवाह करो। तभी इसका उद्धार हो सकेगा। यह मेरी आज्ञा है।"

परशुगम का कोप देखकर भीष्म ने कहा-"महर्षि। इसके यह कहने पर कि यह पहले से ही साल्व देश के राजा से प्रेम कर रही है, मैने इसका विवाह अपने छोटे भाई से नहीं किया और साल्व के पास इसे भिजवा दिया। इसमें मेरा कोई दोष नहीं है। और मैं विवाह कर नहीं सकता हूँ। न भय के कारण, न लोभ के कारण, न बचन के कारण, न मोह के कारण ही, मैं अपनी प्रतिज्ञा तोड़ूँगा।"

परशुराम ने गुस्से में कहा-"तुम मेरी आज्ञा का उल्लंघन करते हो? यदि तुमने मेरी आज्ञा का पालन न किया, तो मैं तुम्हारा, और तुम्हारे मन्त्रियों का नाश कर सकता हूँ। सावधान।"



भीष्म ने उसको कई प्रकार से शान्त करने का प्रयत्न किया। पर कोई फायदा न हुआ। आखिर भीष्म ने उसको प्रणाम करके कहा-"स्वामी, मैं छोटा हूँ। आप मेरे गुरु हैं। आपने मुझे चार तरह के अस्त्र दिये हैं। और अब आप मुझे युद्ध के लिए ललकार रहे हैं, इसका क्या कारण है?"

"अगर मैं तेरा गुरु ही हूँ तो मेरी बात क्यों नहीं सुनते? तेरे कारण ऐसी परिस्थिति पैदा हो गई है कि इस लड़की से कोई बिवाह नहीं करेगा। क्या इससे



"लगता है, तुम मुझ से युद्ध करने के लिये उतावले हो रहे हो। कल युद्ध के लिए तैयार होकर कुरुक्षेत्र में आओ, तुम्हें यम के पास भिजवा दूँगा।" परशुराम ने कहा।

भीष्म ने उसको प्रणाम किया, और हस्तिनापुर आकर सत्यवती से जो कुछ गुजरा था, कहा। "विजयी होओ, बेटा," सत्यवती ने भीष्म को आशीर्वाद दिया। अगले दिन भीष्म ने ब्राह्मणों से आवश्यक संस्कार करवाये। युद्ध के लिए सन्नद्ध होकर, सफेद घोड़ों के, चान्दी के रथ पर समस्त आयुध रखकर, सफेद कपड़े धारण कर, सफेद छतरी के साथ, कुरुक्षेत्र गया।

विवाह करना तेरा कर्तव्य नहीं है? मैं तेरे हित की बात कर रहा हूँ। तुम इससे विवाह करो।" परशुराम ने कहा।

"स्वामी, इसने एक को अपना पति चुन लिया है। इसे मैंने एक बार छोड़ दिया है। ऐसी स्त्री को मैं कभी पत्नी के रूप में स्वीकार न करूँगा। आप मेरे गुरु हैं। ब्राह्मण हैं। तपस्वी हैं। आपको मारना मुझे पसन्द नहीं है। इसलिये आपसे प्रार्थना कर रहा हूँ। अगर आवेश में आपने क्षत्रिय धर्म का अवलम्बन कर मुझ पर अस्त्र उठाया, तो मेरा आपका संहार करना धर्म विरुद्ध न होगा। मैं इस विषय में पीछे भी न हटूँगा।" भीष्म ने कहा।

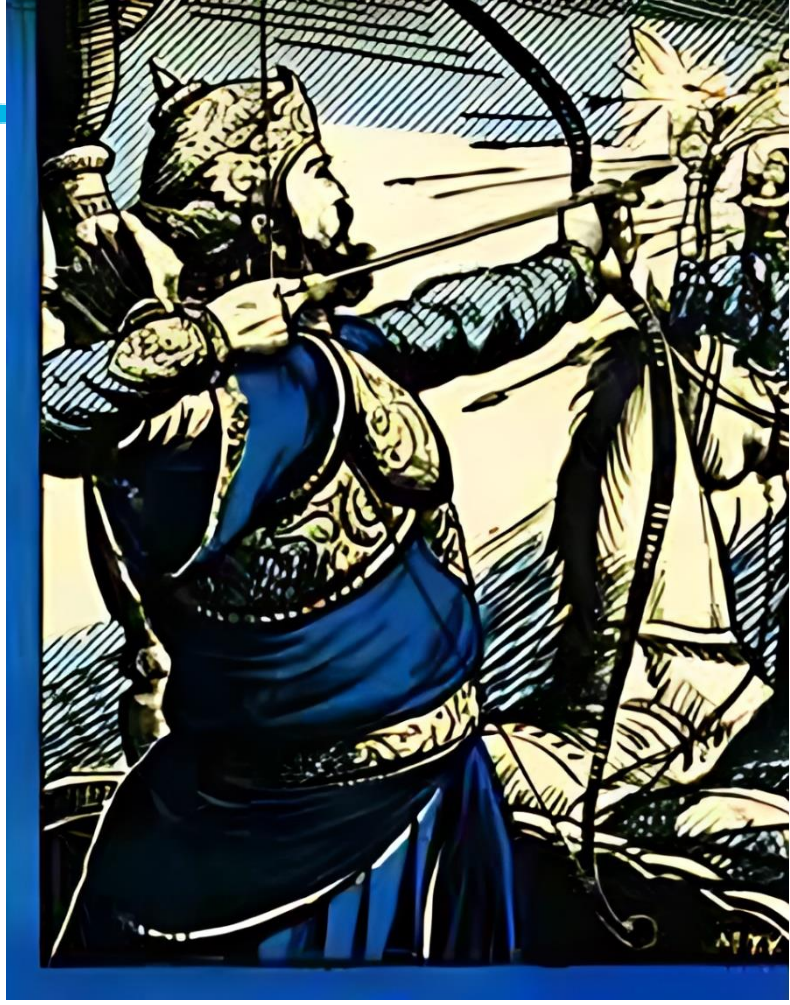
तबतक, परशुराम, मुनि और ब्राह्मणों के साथ, कुरुक्षेत्र पहुँच चुका था। उसको देखते ही भीष्म ने शंख बजाया। उस समय गङ्गा ने अपने पुत्र भीष्म के पास आकर कहा-"बेटा, तुम परशुराम से क्यों युद्ध कर रहे हो? तुम ऐसा न करो। यह ठीक नहीं है।"

भीष्म ने हाथ जोड़कर कहा-"माँ, तुम जानती ही होगी, जो कुछ गुजरा है। अगर इसमें कोई गलती हो, तो मैं युद्ध न करूँगा।"

फिर गङ्गा ने परशुराम से भी कहकर देखा। पर परशुराम ने भी न सुना। तब भीष्म रथ से उतरकर, पैदल परशुराम के पास गया। उसने कहा-"महात्मा, मैं रथ में आया हूँ। मैंने कवच पहना हुआ है। आप भी मेरी तरह रथ, कवच बगैरह ले आइये। ऐसा करने पर ही मेरे में, आपसे युद्ध करने के लिए उत्साह बढ़ेगा।"

"भीष्म, मेरे लिए भूमि ही रथ है। वेद ही घोड़े हैं। सावत्री, गायत्री, सरस्वती मेरे कवच हैं। वायु ही मेरा सारथी है।" परशुराम ने कहा।

तब भीष्म को ऐसा अनुभव हुआ जैसे परशुराम रथ में हो। परशुराम का मुख्य अनुचर, अक्कृतव्रण उसका सारथी बना हुआ था। भीष्म ने आश्चर्य करके, नमस्कार करके कहा-"स्वामी, आप मेरे समान हो, या मुझ से अधिक हों, मैं आपसे



युद्ध करने जा रहा हूँ। आप मेरे गुरु हैं, आशीर्वाद दीजिये कि इस युद्ध में मेरी विजय हो।"

"भीष्म, मैं तुम से बड़ा हूँ। इसलिये पैदल आकर मेरे सामने नमस्कार करना ठीक है। परन्तु में यह आशीर्वाद न दूँगा कि तुम इस युद्ध में विजयी हो। तुम्हे हराने के लिए ही मैं आया हूँ।" परशुराम ने कहा।

फिर दोनों में युद्ध प्रारम्भ हुआ। होने को तो वह द्वन्द्व युद्ध ही था, पर भयङ्कर युद्ध था। दोनों अस्त्र-शस्त्रों में प्रवीण योद्धा थे। उन दोनों ने एक

दूसरे को कई बार मूर्च्छित किया। तेईस दिन युद्ध चलता रहा, फिर भी युद्ध में किसी की विजय नहीं हुई।

तेईसवें दिन रात को भीष्म को इस युद्ध के बारे में चिन्ता होने लगी। उसने अपने पितरों को कई बार प्रणाम किया। अगर मुझे युद्ध में जीतना है, तो आज रात मुझे देवता प्रत्यक्ष होंगे।" उसने सोचा। जैसे उसने सोचा था, उसको स्वप्न में आठ ब्राह्मण दिखाई दिये। एक बार, जब भीष्म युद्धक्षेत्र में मूर्छित हो गया था, तब इन ब्राह्मणों ने पकड़कर उसकी रक्षा की थी। उसको ऐसा लगा।

इन ब्राह्मणों ने भीष्म ने कहा-"डरो मत! इस युद्ध में तुम्हारी ही विजय होगी। हम आठों का शरीर तू ही है। प्रस्वायन अस्त्र का उपयोग तुम पिछले जन्म में तो जानते थे, इस जन्म में भूल गये हो। इसके उपयोग से परशुराम मरेगा तो नहीं, पर इस प्रकार गिर जायेगा जैसे मर गया हो।

चौबीसवें दिन, महा भयङ्कर युद्ध हुआ। बीच में, भीष्म ने प्रस्वायन नाम का अस्त्र परशुराम पर उपयोग करना चाहा। आकाश में, अदृश्य रूप में जो देवता युद्ध देख रहे थे, वे चिल्लाये-"नहीं, नहीं, भीष्म।" नारद ने भीष्म के समक्ष प्रत्यक्ष होकर कहा-"भीष्म, परशुराम बड़ा है। ब्राह्मण है, यही नहीं, तुम्हारा गुरु है। अगर तुमने इस अस्त्र का उपयोग किया तो उसका अपमान होगा। इसलिए इस अस्त्र का उपयोग न करो।"

भीष्म को अस्त्र का उपयोग करता देख, परशुराम ने भी ब्रह्मास्त्र छोड़ा, पर उसने भीष्म के साथ वह अब वापस कर लिया। और उसके मुख से निकल गया-"बुद्धिहीन हो भीष्म से हार गया।"





[१२]

[शंख के पहाड़ी इलाके में चन्द्रवर्मा और कपालिनी दोनों मिले। दोनों ने उसे मारने की सोची। सूर्योदय के समय शंख पहाड़ के किनारे आया। चन्द्रवर्मा ने उसे खड्ड में गिरा दिया। खड्ड में गिरने से पहले शंख ने अपने जादू के डण्डे से, पूजागृह को भी नींव सहित उखाड़कर, झील में फ़ेंक दिया। उसके बाद.......]

मान्त्रिक शंख को "धोखा, धोखा" जोर से चिल्लाते और हाथ के जादू के डण्डे को पूजा गृह की ओर फेंकते देखते ही, कपालिनी ढह सी गई। इतने में शंख के पूजा गृह को हवा में उड़ता देख चन्द्रवर्मा अचम्भे में पड़ गया। वह अभी सम्भल भी न पाया था कि पूजा गृह झील में जा गिरा। वह भय और आश्चर्य से स्वयं काँप रहा था, किसी और को क्या देखता? इसलिये उसने कपालिनी का बगल में गिर जाना नहीं देखा।

"वर्मा" धीमी सी आवाज आने पर, चन्द्रवर्मा इस तरह चौंका, जैसे बेहोशी चली गई हो। तब उसने कपालिनी की ओर देखा। कपालिनी एक बड़े-से पत्थर को पकड़कर उठने का प्रयत्न कर रही थी। चन्द्रवर्मा ने हाथ बढ़ाकर उसको उठने में मदद दी।



"वर्मा, जो दुर्भाग्य मुझे सता रहा था, लगता है, तुम्हें भी सता रहा है। शंख ने आखिरी क्षण में हमारे सब प्रयत्नों पर पानी फेर दिया। जब मैं और तू उसी असहाय स्थिति में हैं, जिसमें हम पहले थे। अपनी जगह छोड़ी, कितनी ही मुसीबतें झेली, मरते मरते शंख के इस पहाड़ पर आये, पर हम दोनों को मिली वही निराशा, मिला वही दुर्भाग्य, कष्ट ही कष्ट और काम कुछ भी न बना।" कपालिनी ने कहा।

कपालिनी के यह कहने पर चन्द्रवर्मा जान गया कि सारा प्रयत्न नसफल हो गया था। झील में पूजा गृह के गिर जाने के कारण बड़ी बड़ी लहरें उठ रही थीं। उनकी ओर देखते हुये उसने कहा-"कपालिनी, क्या तुम यह सन्देह कर रही हो कि पूजा गृह के साथ अपूर्व शक्तिवाला शंख भी झील में गिर पड़ा है?"

"सन्देह नहीं, वर्मा, यह सच है। शंख के पूजा गृह में वह अपूर्व शक्तिबाला शंख ही नहीं, कितनी ही और महाशक्तिषाली चीजें थीं। मैंने केवल शंख ही चाहा था। पर वे वस्तुयें भी, जो तुझे अपने राज्य को, शत्रुओं के हाथ से लेने में मदद करती उस पूजा गृह के साथ पानी में जा समा गई हैं, और हम दोनों वहीं हैं, जहाँ पहले थे। कुछ नहीं पा सके।" कपालिनी ने कहा।

चन्द्रवर्मा उन वस्तुओं के बारे में सोचने लगा, जो मिलती मिलती उसके हाथ से निकल गई थीं। फिर मन को दृढ़ करके उसने कहा-"कपालिनी, जो हो गया सो हो गया, उसके बारे में सोचने से

कोई फायदा नहीं है। यही काफी है कि हमने एक क्रूर, निर्दय मान्त्रिक को मार दिया है।" फिर उसने आँखें इस तरह बड़ी कीं, जैसे कोई बात अचानक याद भा गई हो। "यह शंख तो पानी मैं गिर गया है। अब उस चीज़ को कहाँ खोजा जाये, जो तेरा बुढ़ापा इटाकर, यौवन दे सकती हो।"

"कहीं भी, कुछ भी खोजो; पर उस शंख-सी दूसरी चीज नहीं मिलेगी, बर्मा।" कपालिनी ने निरुत्साहित होकर कहा-"मेरी आयु इस समय इतनी है कि किसी मामूली आदमी या स्त्री की नहीं होगी। इसी प्रकार जीते रहने की इच्छा भी मुझ मैं नहीं है। चाहे मैं कितने ही साल जीऊँ मगर अब ऐसी कौन-सी नई चीज बाकी रह गई है, जिसका आनन्द में उठाना चाहूँगी। अब मेरा सारा दुःख तेरे ही बारे में है। चिन्ता, तेरे बारे में है। मेरे लिए तुमने बहुत मुसीबतें झेलीं, जान को भी जोखिम में डाला और अब मेरी हालत यह है कि मैं तुम्हारी मदद किसी खरह भी नहीं कर पा रही हूँ। लाचारी है। मुझे इसका अफसोस है।"



ये बातें सुनकर चन्द्रवर्मा को कपालिनी पर दया आई, उसके प्रति उसमें आदर भाव भी पैदा हुआ। अपूर्व शक्तिवाले शंख को पाने के लिए वह सालों से प्रयत्न करती रही, और अब वह प्रयत्न असफल हो गया था। परन्तु उसको उसकी चिन्ता नहीं है, उसे यह चिन्ता ही सता रही है कि वह मेरी मदद किसी तरह न कर सकी। मेरे मत्थे कष्ट ही कष्ट पड़े।

"कपालिनी, तुमने मेरी बहुत मदद की है। जब मैं नदी में गिरा और बहता बहता तुम्हारे प्रदेश में पहुँचा, तो मुझे लगा कि



मैं जीवित न रहूँगा। परन्तु तुमने मुझे अपने घर में पनाह दी, मेरे कृतज्ञ होने के लिए वह सहायता ही काफी है। खैर, अब हमें क्या करना है?" चन्द्रवर्मा ने कुछ सोचते हुए कहा।

कपालिनी ने पहाड़ की ओर देखकर कहा-"वर्मा, अब हम दोनों के रास्ते अलग हैं। मैं शेष जीवन इसी पहाड़ पर बिताऊँगी। जीवन की अन्तिम अवस्था निश्चिन्त हो, एक जगह बिता देना अच्छा है। घूमते फिरते रहने से कोई चैन न मिलेगी।"

"अच्छा, यदि यही ही तुम्हारी इच्छा है, तो इस पहाड़ पर, तुम्हारे लिए एक घर बनाने की में और कालसर्प कोशिश करेंगे। चलो, पहाड़ पर चलें।" चन्द्रवर्मा ने कहा।

कपालिनी ने सिर हिलाया, जैसे उसे यह सुझाव पसन्द हो। चन्द्रवर्मा, पत्थरों में से जानेवाली पगडण्डी से पहाड़ की ओर चला। उसके पीछे कपालिनी और कालसर्प चले आ रहे थे। चन्द्रवर्मा जब उस पूर्व दिशा में स्थित पहाड़ के पास पहुँचा, जहाँ से शंख खड्ड में जा गिरा था, तो उसने झुककर खड्ड में देखा। उसे पत्थरों पर औधे मुँह पड़ा शंख दिखाई दिया। जब उसे वह लगातार देखता रहा तो उसे ऐसा लगा, जैसे शंख का हाथ थोड़ा थोड़ा हिल रहा हो। जान न गई हो। तुरन्त चन्द्रवर्मा में उसके प्रति द्वेष, जाने कहाँ से उमड़ आया।

चन्द्रवर्मा ने पीछे आती हुई कपालिनी की ओर मुड़ कर कहा-"लगता है, उस पापी के शरीर में, थोड़े बहुत प्राण बाकी रह गये हैं। अगर कहीं वह जिन्दा हो उठा, तो हमारी खैर नहीं है। यह देखो, मैं

इस पत्थर से उसका सिर चूर चूर कर दूँगा।" कहते हुए उसने एक पत्थर उठाया, निशाना लगाकर उसे खड्ड में फेंका।

थोड़ी दूर जाने के बाद वे उस जगह पहुंचे, जहाँ पहले शंख का पूजागृह था। उस जगह जहाँ पूजागृह था, अब केवल नींव ही रह गई थी। चन्द्रवर्मा ने उन्हें दिखाते हुए कहा-"तेरे लिए घर इसी नींव पर तैयार किया जा सकता है। तुम इसके लिए मान ही जाओगी।"

कपालिनी इसके लिए मान गई। तब तक सूर्य काफ़ी चढ़ आया था। चन्द्रवर्मा ने पूर्व की ओर एक बार देखकर कहा-"बहुत भूख लग रही है। कुछ खाकर काम शुरु किया जाये तो कितना अच्छा हो। फलों के लिए फिर नीचे जाना होगा।" उसने पहाड़ के नीचे की ओर देख निश्वास छोड़ा।

यह देख कि चन्द्रवर्मा बहुत थक गया है, कपालिनी ने कालसर्प की ओर देखकर कहा-"कालसर्प, यह लो, मैं तुम्हारा मानव रूप तुम्हें वापस दे देता हूँ। आज से तुम स्वतन्त्र हो, तुम जहाँ जहाँ चाहो वहाँ जा सकते हो।" कोई मन्त्र पढ़कर मनुष्य की हड्डी से उसने



कालसर्प का सिर छुआ। तुरन्त छः फुटा, हट्टकट्टा, तना-सा, बड़े बड़े हाथों, और पैरोंवाला एक नौजवान वहाँ प्रत्यक्ष हुआ। उनकी तरफ देखने लगा।

"कपालिनी, मैं तुम्हारी कृपा के लिए कृतज्ञ हूँ।" उस युवक ने कहा फिर चन्द्रवर्मा की ओर मुड़कर उसने कहा-"मैं आपकी सहायता कभी न भूल पाऊँगा।" उसने उसको नमस्कार किया।

"मुझे नहीं मालूम, तब तुम्हारा क्या नाम था, जब तुम मनुष्य थे। मेरा एक



शत्रु है, जिसका नाम सर्वकेतु है। चूंकि तुम मेरे मित्र हो, इसलिये मैं तुम्हारा नाम कालकेतु रखता हूँ।" चन्द्रवर्मा ने कहा।

"हाँ, मुझे कालकेतु नाम से ही बुलाइये। किसी न किसी दिन में सर्पकेतु की बलि स्वीकार करूँगा और कालकेतु नाम सार्थक करूँगा।" उस गवयुवक ने कहा।

फिर कालकेतु पहाड़ से उतरा। झील के किनारे के बाग में गया और तरह तरह के फल तोड़कर, चन्द्रवर्मा और कपालिनी के पास आया। तीनों ने फल खाये। पासवाले नाले में पानी पिया।

थोड़ी देर विश्राम करने के बाद चन्द्रवर्मा और कालकेतु ने मिलकर शंख के पूजा गृह की नींव पर एक छोटा-सा घर बनाना शुरू किया। वह काम शाम तक पूरा हो गया।

उस घर में उन्होंने रात काटी। आधी रात हो गई, पर चन्द्रवर्मा को नींद न आई। वह अपने भविष्य के कार्यक्रम के बारे में सोचता रहा।

कपालिनी की सहायता से अपूर्व शक्तिवाले शंख की मदद से अपना राज्य वापस जाने का उसका प्रयत्न असफल हो चुका था। वह सर्वकेतु जिसने क्रूरता से उसके पिता की हत्या करवा दी थी, अब सारे महिष्मती राज्य का राजा हो गया होगा। उसको जीतने के लिए कितनी ही बड़ी सेना की आवश्यकता थी। सेना इकट्ठी करने के लिये धन की जरूरत थी। कितनी ही और बातें थीं।

धन मुझे कहाँ से मिल सकेगा!

इसी सोच विचार में चन्द्रवर्मा को नींद न आई। वह बाहर चान्दनी में चहल

कदमी करने लगा। थोड़ी देर बाद कालकेतु ने उसके पास आकर पूछा-"इतनी रात में आप यहाँ क्या कर रहे हैं? किस समस्या के बारे में इतना सोच रहे हैं?"

"कालकेतु। मेरे सामने सभी समस्याएँ ही हैं।" चन्द्रवर्मा ने कहा-"तुम तो जानते ही हो; मैं कभी राजा था और अब जङ्गलों में रह रहा हूँ। सोचा था कि कपालिनी की मदद मिल सकेगी, परन्तु अन्तिम क्षण में पूजागृह के झील में गिर जाने के कारण सारे प्रयत्न असफल हो गये। सारी आशा मिट्टी में जा मिली। मैं अब किसके पास जाऊँ, किसकी सहायता मागूँ? यही में सोच रहा हूँ। क्या तुम जानते हो यहाँ से कितनी दूरी पर मनुष्य रहते हैं?"

"इन पहाड़ों में से, जङ्गलों में से, उत्तर दिशा की ओर सौ योजन जायें, तो गाँव, नगर दिखाई देंगे। मैं आपके साथ आना चाहता था, परन्तु कपालिनी को इस बहाड़ पर अकेला छोड़ना मुझे अच्छा नहीं लग रहा है। वह बहुत दिन जीवित न रहेगी। पहले के घर में भूत,



बर्तमान काल के मोल की सहायता से, मैं जरूर आपके पास आ जाऊँगा।" कालकेतु ने कहा।

कालकेतु की बातों से पन्द्रवर्मा बिलकुल उत्साहित न हुआ। इन पहाड़ों और जङ्गलों में से सौ योजन जाने के बाद, कहीं गाँव-बस्ती दिखाई देंगे। इस सौ योजन के सफर में कितनी ही भयङ्कर बिपत्तियाँ मुझ पर आयेंगी। यह भगवान ही जानते हैं।"

चन्द्रवर्मा सूर्योदय तक यही माथापच्ची करता रहा। सूर्योदय होने पर, उसने झील में स्नान किया। फिर कपालिनी के पास

जाकर उसने अपनी यात्रा के बारे में कहा। कपालिनी ने उसको आर्वाद देकर कहा-"वर्मा, मेरा विश्वास है कि चाहे तुम्हें कितनी ही आपत्तियाँ सहनी पड़ें, आखिर, तुम शत्रुओं का संहार कर अपना राज्य वापिस जीत लोगे।"

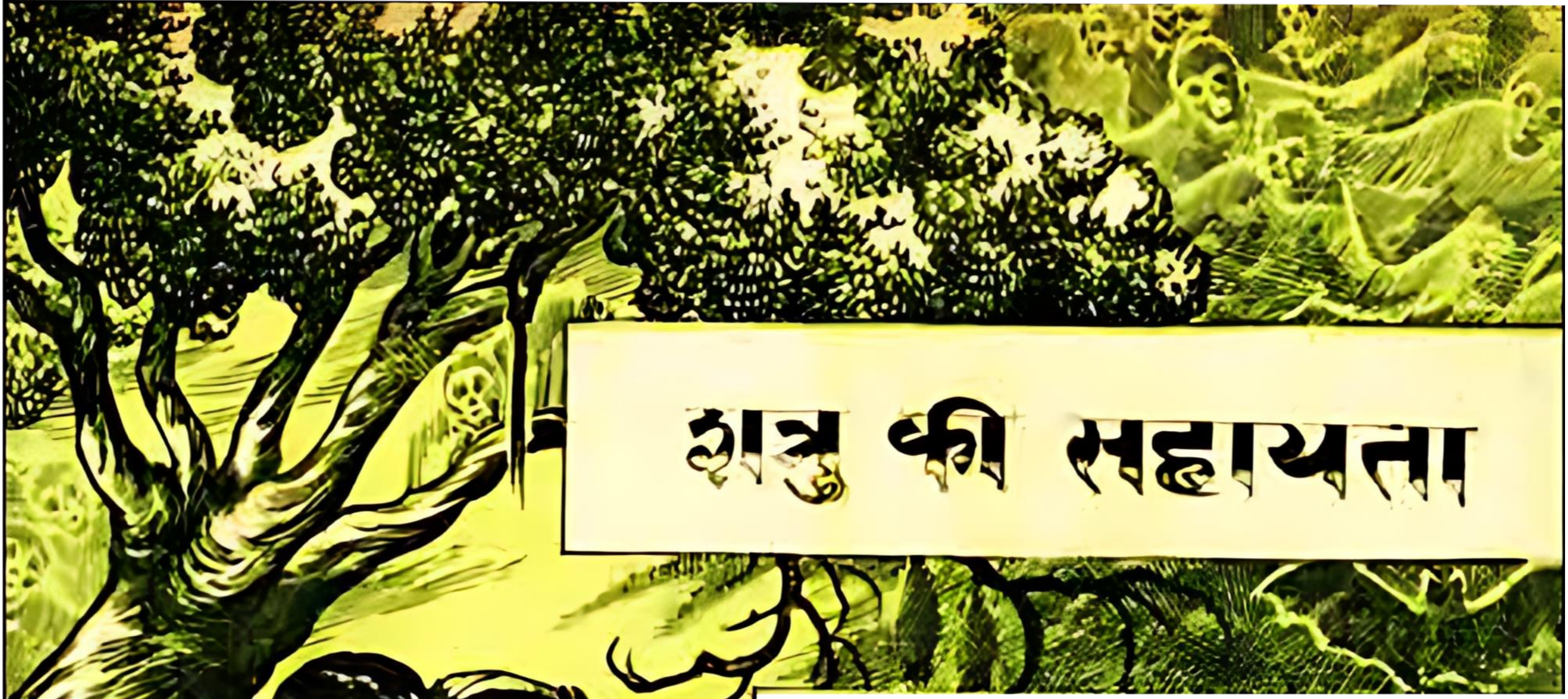
फिर चन्द्रवर्मा, कपालिनी, और कालकेतु से विदा लेकर पहाड़ से उतरकर, उत्तर की ओर जङ्गल में जाने लगा। वह दुपहर तक चलता रहा। फिर थकान उतारने के लिये एक पेड़ के नीचे गया। उस वृक्ष के नीचे, वह लेटने के लिए समतल प्रदेश खोज रहा था कि पेड़ के नीचे करीब चार फुट बड़ी लोहे की जञ्जीर दिखाई दी। उस बड़े घने जङ्गल में, लोहे की जञ्जीर देखकर उसे आश्चर्य हुआ। वह जञ्जीर लेकर उसको गौर से देखने लगा।

उस पर काफी जङ्ग चढ़ गया था। यह जञ्जीर इस जङ्गल में कैसे आई अभी वह सोच ही रहा था कि उसको भयङ्कर भौंकने की आवाज सुनाई दी।

आवाज सुनते ही चन्द्रवर्मा म्यान में से तलवार निकाल कर खड़ा हो गया। दूरी पर पत्थरों पर कूदता फाँदता दान्त निकाले एक बड़ा कुत्ता उसकी तरफ भागा आ रहा था।...."यह मामूली कुत्ता नहीं है। शायद कोई भयङ्कर राक्षस इस रूप में होगा।" सोचते हुये उसने दायें हाथ में तलवार जोर से पकड़ी और बायें हाथ से जञ्जीर उठाई। उसने सोचा कि खतरे के वक्त वह जञ्जीर भी जान बचाने के काम आयेगी। इतने में वह भूत कुत्ता सामने के झुरमुट में से फिर एक बार गरजा। मुख खोलकर बाण की तरह चन्द्रवर्मा की ओर आने लगा।

[अभी है।]





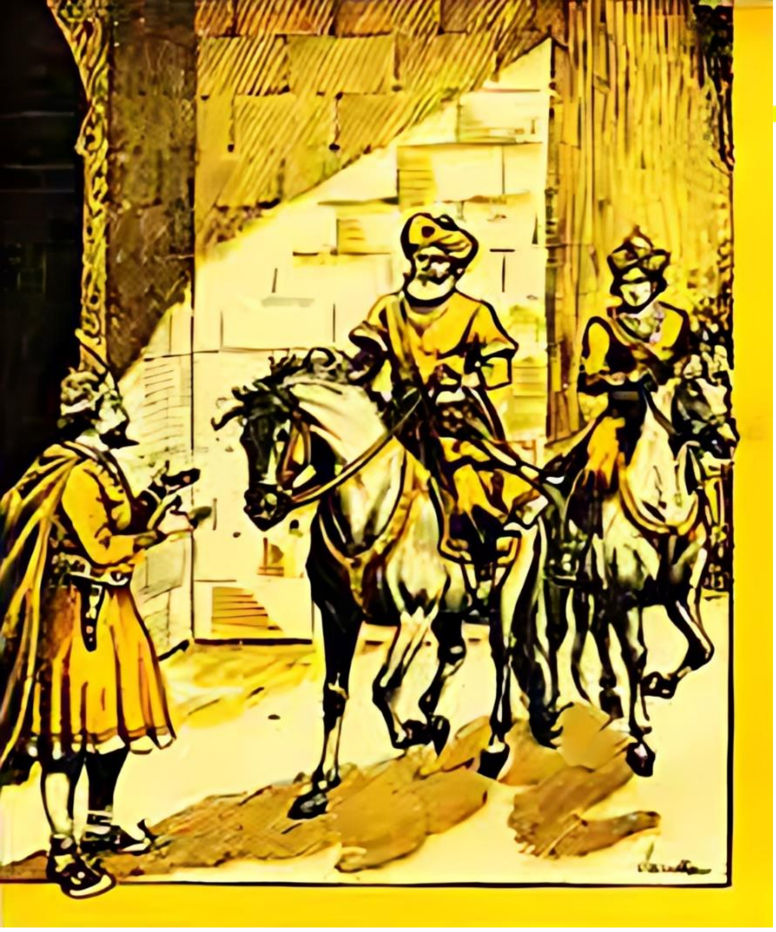
शत्रु की सहायता



विक्रमार्क तो हठी था ही। वह फिर पेड़ के पास गया। शव को उतार कर कन्धे पर डाल, चुप-चाप श्मशान की ओर चला। तब शव में स्थित बेताल ने कहा-"राजा, एक भिखारी के लिए इतने कष्ट झेलना आश्चर्यजनक है। पर कई ऐसे भी हैं, जिन्होंने शत्रुओं की सहायता की है। इसके दृष्टान्त के रूप में, में तुझे मालावती की कहानी सुनाता हूँ।"

त्रिगर्त देश का राजा यशपाल था। उसके राज्य में, चन्द्रवर्मा नाम का एक सामन्त रहा करता था। चन्द्रवर्मा, प्राचीन चन्द्रवंश का था। वह एक राजा के आधीन था।

चन्द्रवर्मा के दो लड़के थे और एक लड़की, जिसका नाम मालावती था। तीनों को अपने वंश पर गर्व था।



त्रिगर्त के राजा, यशपाल का वंश, चन्द्रवर्मा की तरह ऊँचा न था। परन्तु वह एक समर्थ शासक था। वह राज्य में अराजकता न होने देता, अगर कहीं होती भी तो उसे तुरन्त दबा देता।

एक बार, यशपाल को भेदियों द्वारा यह खबर मिली कि चन्द्रवर्मा, गङ्गा के पार के राजा से मिलकर, उसको गद्दी से उतारने का प्रयत्न कर रहा था। चन्द्रवर्मा का किला गङ्गा के इस किनारे ही था। राजा यशपाल ने शूरसिंह नाम के सेनापति को बहुत-सी सेना के साथ चन्द्रवर्मा के किले में भेजा।

चन्द्रवर्मा ने शूरसिंह का खूब स्वागत किया। उसने पूछा-"आप सब का इतनी बड़ी सेना के साथ आने का क्या कारण है? त्रिगर्त देश पर क्या शत्रु आक्रमण करने जा रहे हैं?"

शूरसिंह भी घुमा फिराकर बातें करने में चतुर था। उसने चन्द्रवर्मा से कहा-"नहीं, ऐसी तो कोई बात नहीं है। परन्तु पता लगा है कि गङ्गा के पार के कुछ राजा युद्ध की तैयारी कर रहे हैं। अगर उन्होंने हमला किया तो आप ही को पहले खतरा है। देखिये, महाराजा आपको कितना चाहते हैं। उनके परिवार का भी कोई यदि अपमान करे तो वे सह सकते हैं; पर उनको यह गवाँरा नहीं कि आपके वंश पर कोई हाथ उठाये। राजा ने मुझे इतनी सेना देकर, आपके किले की रक्षा करने के लिए भेजा है।

चन्द्रवर्मा ने सिर झुकाकर कहा-"मैं महाराजा का बहुत ही कृतज्ञ हूँ।"

शूरसिंह ने चन्द्रवर्मा से यह भी कहा-"यह भद्रकीर्ति है हमारे उपसेनापतियों में एक है। इसे और सौ हट्टे कट्टे सैनिकों को आपके परिवार की रक्षा के लिए

आपको दे रहा हूँ। ये रात दिन, आपकी रक्षा करेंगे। भद्रकीर्ति और उसके सैनिकों को किले में रख लीजिये। मैं और मेरी सेना, नदी के किनारे डेरे लगाकर रहेगी।"

यह बात सच थी कि चन्द्रवर्मा, शत्रु राजाओं से मिलकर षडयन्त्र कर रहा था। परन्तु अब वह कुछ न कर सकता था। भले ही ऊपर ऊपर से मीठी बातें उसने की हों, सच यह था कि शूरसिंह ने, चन्द्रवर्मा को उसी के किले में कैदी बना दिया था। अगर कोई बाहर से चन्द्रवर्मा को देखने आता, चन्द्रवर्मा किसी से कोई बात करता, आखिर यहाँ तक कि वह अपने लड़कों से भी बातचीत करता तो इसकी खबर जल्दी ही भद्रकीर्ति को मिल जाती थी। भद्रकीर्ति चौबीसों घण्टे बिल्ली की तरह सारे किले में घूमता रहता। उसके सैनिक सब जगह उपस्थित रहते।

फिर भी चन्द्रवर्मा ने अपने प्रयत्न न छोड़े। वह अपने लड़कों से ही भेदियों का काम लेने लगा। सब प्रयत्न पूरे हो गये। नये साल के दिन चन्द्रपुरी में तरह तरह के उत्सव हुआ करते। रात भर उत्सव होते



रहते। यह प्रबन्ध हुआ कि उस दिन अन्धेरी रात में शत्रुसेना, गङ्गा पार से आयेगी। और चन्द्रवर्मा की सेना उनका स्वागत इस तट पर करेगी। फिर उन दोनों सेनाओं को मिलकर शूरसिंह पर हमला करना था। और इसी समय, चन्द्रवर्मा के लड़कों को किले में भद्रकीर्ति को मार देना था, और उसके सैनिकों को जैसे तैसे कैद में बन्द करना था।

इस साजिश के बारे में भद्रकीर्ति को कुछ भी मालूम न था। यदि कभी उसका उन पर सन्देह भी था तो, अब वह सन्देह जाता रहा। इसका मुख्य कारण

मालावती थी। जब से उसने उसको देखा, तभी से भद्रकीर्ति उस पर मोहित हो गया। भद्रकीति जानता था कि उसका मालावती से प्रेम करना व्यर्थ था। क्योंकि वह जानता था कि चन्द्रवर्मा को अपने वंश पर किनना अभिमान था। चन्द्रवर्मा की लड़की का मामूली क्षत्रिय युवक से विवाह होना, स्वप्न में भी असम्भव था। इसीलिए यदि मालावती कभी उसकी ओर देखती तो वह फूला न समाता।

परन्तु मालावती ने भद्रकीति से प्रेम करना शुरू कर दिया था। वह कभी भी किला छोड़कर कहीं और न गई थी। सिवाय भाइयों के वह और किसी को न जानती थी। और उस हालत में भद्रकीर्ति यहाँ अतिथि होकर आया। वह सुन्दर था। विनयशील था। उम्र में छोटा था, पर युद्ध भूमि में वह बहुत बहादुर था। होनहार था।

जब मालावती को मालूम हुआ कि ऐसे आदमी को नव वर्ष के पुण्य दिवस पर उसके पिता और भाई मारनेवाले थे, तो उसको बहुत बुरा लगा। वह जानती थी कि भद्रकीर्ति शत्रु था। उसको उसने



किले में कैद भी कर रखा था। परन्तु उसने उससे प्रेम किया था।

उस दिन रात को भोजन के बाद, बुर्ज पर खड़े होकर भद्रकीति ने चारों ओर देखा, सर्वत्र शान्ति थी। अन्धकार में गङ्गा अस्पष्ट दीख रही थी। तट के सैनिकों के डेरे नहीं दिखाई दे रहे थे।

वह मालावती के बारे में सोचता गङ्गा की ओर देख रहा था कि वहाँ उसको कुछ दिखाई दिया। अगर वे किश्तियाँ ही हों, तो उस समय उतनी किश्तियाँ वहाँ क्यों थीं? यह जानने के लिए बुर्ज से वह उतर रहा था कि उसको चूड़ियों की आवाज सुनाई दी। उसके कुछ देर बाद मालावती ने उसके पास आकर कहा-"मेरे पिताजी और भाई, आपको मारने के लिए इसी तरफ आ रहे हैं। आप, किले की दीवार से, जैसे भी हो, कूदकर भाग जाइये।"

किले की दीवार बिलकुल सीधी न थी..... एक तरफ झुकी हुई थी। भद्रकीर्ती दीवार के पत्थरों को पकड़ता, कभी गिरता, कभी फिसलता नीचे उतरा, और अपने डेरे की ओर भागा।





थोड़ी देर बाद, चन्द्रवर्मा ओर उसके लड़कों ने मालावती से आकर पूछा-"भद्रकीर्ति कहाँ है?"

"मुझे देखते ही, वह दीवार कूदकर भाग गया।" मालावती ने कहा।

चन्द्रवर्मा ने अपने सैनिकों द्वारा भद्रकीर्ति के सैनिकों को एक एक करके एक कमरे में बुलाया.... और उन सब को उस कमरे में बन्द कर दिया। इस बीच भद्रकीर्ति, शूरसिंह से मिला, और जो कुछ उसे मालूम हुआ था, उसने उससे कह दिया।

"यह तुम्हारी ही गलती है कि तुम षड़यन्त्र को नहीं ताड़ सके। मुझे पहले ही इस बारे में मालूम हो गया था। इसलिए मैंने किले के फाटक पर सैनिक भेज दिये हैं ताकि चन्द्रवर्मा के सैनिक बाहर न आ सकें। तुम्हारे कथन के अनुसार तो शत्रु सेना भी गङ्गा पार से आती मालूम होती है। उनका स्वागत करने के लिए मैं अभी सेना भेजता हूँ। तुम नेतृत्व करो। मैं स्वयं किले में जाकर चन्द्रवर्मा की खबर लूँगा।

भद्रकीर्ति कुछ सेना लेकर गङ्गा के किनारे गया। उसके पहुँचने के थोड़ी देर बाद एक सौ किश्तियाँ किनारे पर लगीं। उनमें से दो हज़ार शत्रुसेना उतरी। अन्धेरे में, किनारे सैनिकों को देखकर उन्होंने सोचा कि वे उनका साथ देनेवाले षडयन्त्रकारी ही थे। भद्रकीर्ति ने शत्रुओं से कहा-"तुम हथियार सौंप दो। षड्यन्त्र सफल हो गया है। शिविर हमारे वश में पहले ही आ चुका है। अब हम सीधे शिविर जा सकते हैं।"

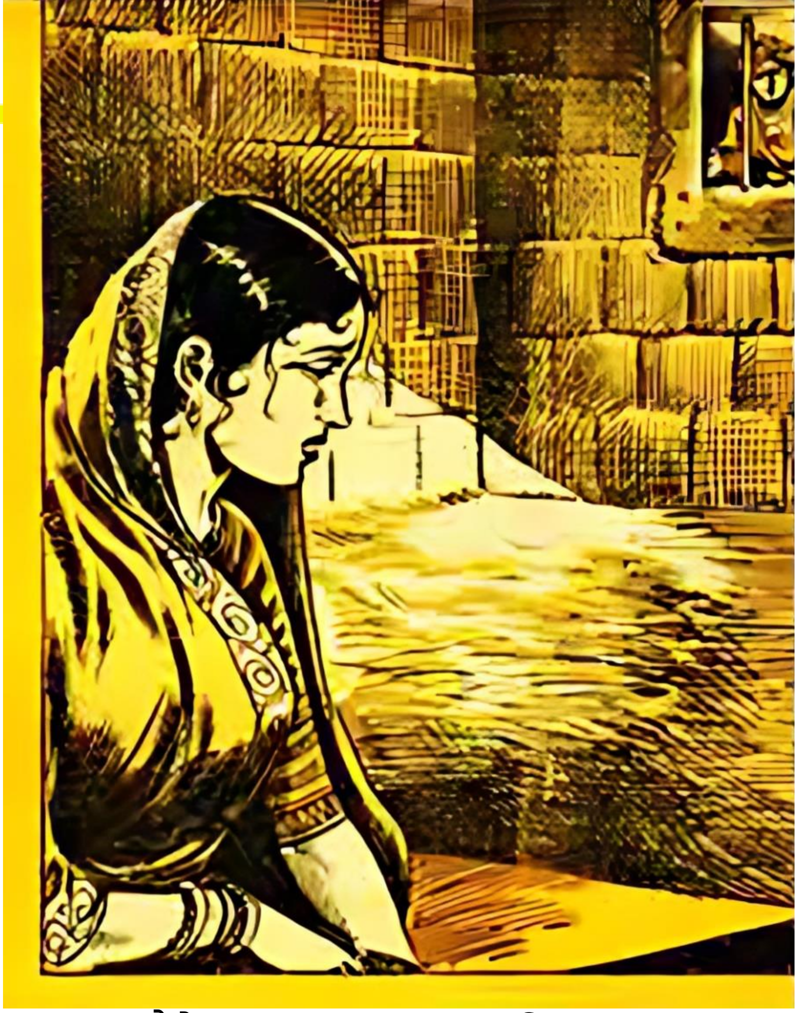
शत्रुओं ने सोचा कि ये बातें चन्द्रवर्मा की सेना का अधिकारी ही कह रहा था।

उन्होंने, जो उसने कहा, वह किया। वे इस तरह भद्रकीर्ति के कैदी बना लिए गये और शिविर की ओर ले जाये गये।

यह काम होते ही भद्रकीर्ति फिर किला वापस गया। वहाँ चन्द्रवर्मा, और उसके पुत्र, आदि, कैदी बना लिए गये थे। शूरसिंह ने उनको मृत्युदण्ड भी दे दिया था।

भद्रकीर्ति ने शूरसिंह से कहा-"महा सेनापति, मैं आपसे एक प्रार्थना करना चाहता हूँ। मालावती ने मेरी प्राण रक्षा ही केवल न की, अपितु अपने पिता के राजद्रोह को शान्त करने में उसने मेरी बहुत मदद की। उसे जेल से छुड़वा दीजिये। मैं उसके साथ विवाह करने की सोच रहा हूँ।" उसने मालावती को छोड़ने की आज्ञा दी। उसको कैद से छुड़ाने के लिए भद्रकीर्ति स्वयं गया। मालावती कैद की कोठरी में दुखी बैठी थी।

"मालावती, मैं तुमको जेल से छुड़ाने के लिए आया हूँ।" भद्रकीर्ति ने कहा। मालावती ने एक बार उसकी ओर देखकर सिर फेर लिया। उसके मुख से कोई बात न निकली।



"क्या मैंने तुम्हारा कुछ बुरा किया है? तुम मेरी तरफ क्यों नहीं देखती? राजद्रोही की लड़की हो, इस बदनामी के बावजूद, मैं तुमसे शादी करना चाहता हूँ।" भद्रकीर्ति ने कहा।

इस पर भी उसने कुछ न कहा।

"जब तुम्हें मुझ से इतनी चिढ़ थी तो मेरे प्राणों की रक्षा क्यों की थी? इससे तो अच्छा होता कि मैं तुम्हारे पिता के हाथों मार दिया जाता। अब भी कुछ नहीं गया है, यह लो मेरी तलवार, इससे मुझे मार दो।" भद्रकीर्ति ने कहा।

मालावती मुस्कराती मुस्कराती उठी, उसके पास गई। उसकी तलवार उसने ले ली। उसने तुरन्त उस तलवार को अपनी छाती में भोंक लिया, वह वहीं मर गई। भद्रकीर्ति उसके इस कार्य पर चकित हो उठा।

बेताल ने यह कथा सुनाकर पूछा-"राजा, मालावती ने क्यों आत्महत्या की थी? क्या उसने मद्रकीर्ति से प्रेम नहीं किया था? क्या वह इसलिए पछता रही थी कि उसने उसके प्राणों की रक्षा की थी? अगर प्रेम करती थी तो उससे शादी करने का मौका मिलने पर उसने आत्महत्या क्यों कर ली? इसका क्या कारण है? अगर तुमने जान बूझकर इसका उत्तर न दिया, तो तुम्हारा सिर टूट जायेगा।"

विक्रमार्क ने कहा-"यह सच है कि मालावती ने भद्रकीर्ति से प्रेम किया था। इसलिए उसने उसकी रक्षा की थी। पर केवल इसलिए कि उसने उससे प्रेम किया था, इसलिए वह कुलद्रोही भी हो गई थी, यह नहीं समझना चाहिये। वंश के गौरव का ख़याल जितना चन्द्रवर्मा को था उतना उसको भी था। प्रेम के कारण, वंश का सर्वनाश बच सकता था, परन्तु उसके साथ विवाह करके वह अपने वंश पर कलङ्क नहीं लगाना चाहती थी। वंश के खतम हो जाने के बाद, उसका अपने प्रेम के लिए जीवित रहना, भद्रकीर्ति से विवाह करना, आदि उसके लिए सम्भव न था, इसीलिए मालावती ने आत्महत्या कर ली।

राजा का इस प्रकार मौन भङ्ग होते ही, बेताल शव के साथ अदृश्य हो गया, और फिर पेड़ पर जा बैठा।

(कल्पित)





जैसे को तैसा

चीन के एक ग्राम में एक जमीन्दार रहा करता था। वह बहुत निर्दय था। उसके यहाँ कोई भी नौकर अधिक दिन तक काम न कर पाता था। वह जितने दिन उन्हें रखता, उनसे खूब काम लेता, जब उसको उनकी जरूरत न होती तो कोई बहाना करके उनको निकाल देता, और पैसा न देता। इस तरह उसने कितने ही नौकर रखे और उनको निकाल दिया।

उस गाँव में, उसके यहाँ कोई काम न करता। फिर भी दूर दूर से कुछ लोग आते, उसके यहाँ काम करते और बिना वेतन पाये भेज दिये जाते। यह सिलसिला बहुत दिनों से चल रहा था।

एक दिन दूर से कोई गरीब लड़का आया और उस जमीन्दार के यहाँ काम करने लगा।

"अरे भाई, मैं पहले ही तुम्हें बता दूँ। अगर जो, मैंने कहा, तुमने न किया, तो तुम्हें एक पैसा न दूँगा और काम से भेज दूँगा। यह अच्छी तरह जान लो।" जमीन्दार ने उस लड़के से कहा।

"इसमें क्या धरा है? हुक्म का न पालन करना गलत ही तो है!" नये नौकर ने कहा।

जब से वह काम पर आया था, सवेरा होने से पहले वह काम शुरु करता और अन्धेरा होने तक करता रहता। कभी आराम न करता।

एक दिन जमीन्दार ने नौकर से कहा-"पहाड़ पर बाँसों पर पत्ते लग गये हैं। कल बैल को ले जाकर उन्हें खिलाना। देखना कहीं तुम पत्ते तोड़कर न देना, उसे ही पेट भर खूब खाने देना।"

राम मोहन

"इसमें क्या घरा है?" नौकर ने कहा।

अगले दिन सवेरे, वह बैल को बाँसों के पास ले गया। उसने, उसको एक बाँस से बाँध दिया। फिर वह उसको एक छड़ी से मारते हुये चिल्लाया-"चढ़ो, ऊपर चढ़ते क्यों नहीं?" बैल मार न खा सका, बिदक-सा गया और बाँसों के चारों और भागने लगा। नौकर उसे लगातार मारता जाता था।

उस तरफ आने जानेवाले लोग यह देख हँसे। जल्दी ही यह बात जमीन्दार तक भी पहुँची। वह वहाँ भागा भागा पहुँचा। "क्या तुम बैल को मारकर ही दम लोगे? पागल कहीं का!"

"आप नहीं जानते, ठहरिये मालिक। इसे इतना घमण्ड! मैंने चढ़कर पत्ते खाने के लिए कहा। पर यह चढ़ता ही नहीं है। जिद कर रहा है। जब तक इसे खूब नहीं पीटूँगा तब तक इसे अक्ल न आयेगी।" नौकर ने कहा।

"बस, बस, तू उसे कुछ मत खिला, उसे घर ले जा। तूने नाक में दम कर रखा है।" जमीन्दार ने कहा।



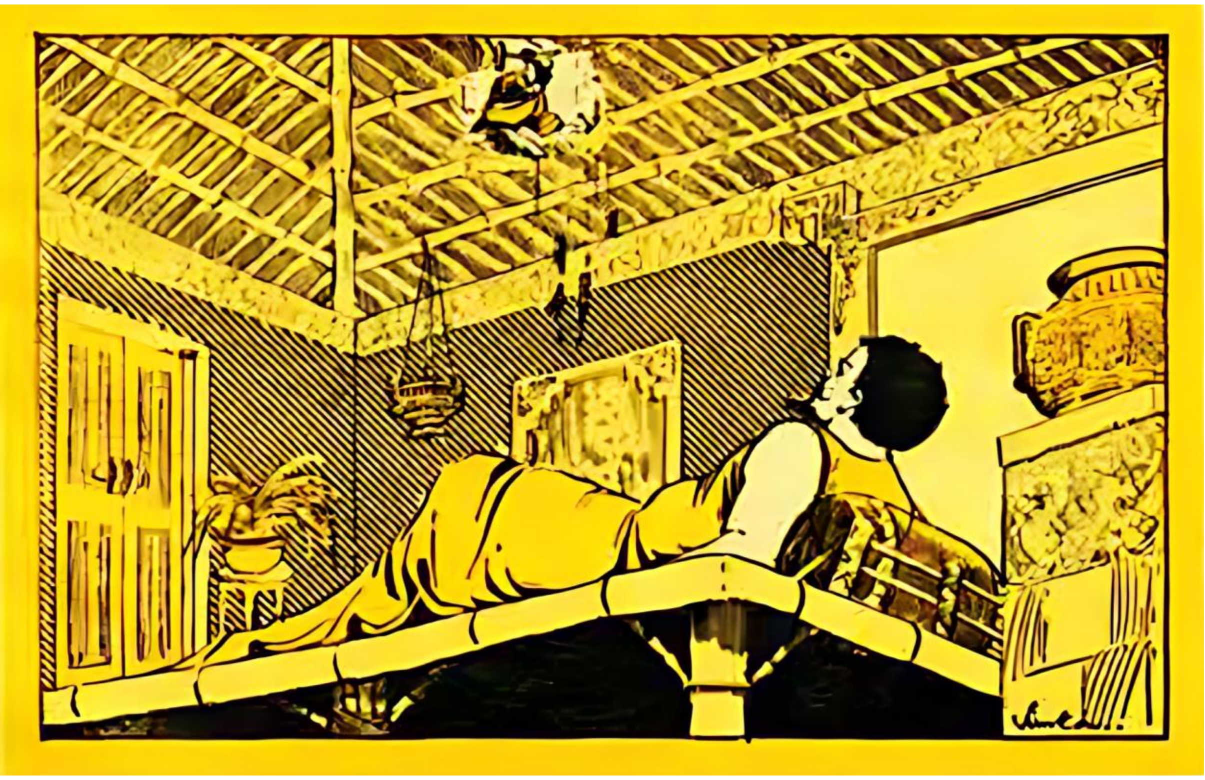
इसके बाद, जमीन्दार नौकर से चिढ़ता रहा। उसको जैसे भी हो कोई बहाना करके, बिना पैसे दिये भेजने का उसने निश्चय किया। बहाने के लिए माथापच्ची करने लगा। एक दिन उसने अपने नौकर से कहा-"हमारे घर पर खपरैल की छत देख रहे हो न? वह होने को तो बहुत बड़ी है पर किसी काम की नहीं। कल उस पर पौधे लगाओ।"

"इसमें क्या घरा है?" नौकर ने कहा।

अगले दिन सवेरे वह छत पर चढ़ गया, और छत तोड़ने लगा। खपरैल के कुछ टुकड़े घर में जा गिरे, जहाँ जमीन्दार सो रहा था। उसने बाहर आकर, सिर ऊपर उठाकर कहा-"क्यों यों खपरैल तोड़ रहे हो? तुम्हें हो क्या गया है? उतरो नीचे।"

"आप कुछ नहीं जानते! ठहरिये, पौधे लगाने के लिए सारी छत खोद रहा हूँ।" नौकर ने कहा।

"अरे भला हो तेरा। तुम पौधे न लगाओ। पहले छत से उतरो।" जमीन्दार न सोच सका उस जैसे आदमी का क्या किया जाय।



गरमियाँ आईं। पानी की कमी के कारण खेत खराब होने लगे। उस हालत में, जमीन्दार ने अपने नौकर से कहा-"अरे गरमी में हमारे सब खेत खराब हो रहे हैं, कल हमारे खेतों को घर में लाकर रखो।"

जमीन्दार ने सोचा था कि यह कहने से वह चला जायेगा।

"इस में क्या घरा है?" नौकर ने कहा।

जब अगले दिन जमीन्दार उठा तो उसको किसी का शोर करना सुनाई दिया। वह बाहर आया। गुस्से में इधर उधर देखा।

नौकर दीवार तोड़ रहा था। उसने एक दरवाजा तक निकाल दिया था। दीवार थोड़ी थोड़ी गिर गई थी। और बहुत कुछ गिरनेवाली थी।

"अरे क्या कर रहे हो ? क्या तुम पागल हो गये हो? ठहरो।" जमीन्दार ने कहा।

"आप कुछ नहीं जानते, ठहरिये।" कहकर नौकर पहले की तरह दीवार तोड़ता जा रहा था।

"यह काम बन्द करो, बन्द करते हो कि नहीं?" जमीन्दार ने खौलते हुए कहा।

"आप ही ने तो कहा था कि खेत घर ले आओ?" नौकर ने कहा।

"क्या मैंने तुम्हें दीवार तोड़ने के लिए कहा था?"

"अगर यह दीवार न हटाई गई तो उतने बड़े खेत घर में कैसे आ सकेंगे?" नौकर ने कहा।

अब जमीन्दार को अक्ल आई, उसने उसको बहुत-सा रुपया देकर भेज दिया।





एथेन्स में एक अमीर रहा करता था। उसकी एक लड़की थी। उसका नाम हेर्मिया था। उसकी एक सहेली थी, जिसका नाम हेलेना था। हेर्मिया के सयानी होने पर, उसके पिता ने, उसके लिए एक वर निश्चित किया। उसका नाम डिमिट्रियस था। परन्तु हेर्मिया ने डिमिट्रियस से प्रेम न किया था। लिसाण्डर नाम के किसी और युवक से वह प्रेम किया करती थी।

डिमिट्रियस, जो हेर्मिया से शादी करने की सोच रहा था कभी हेलेना से प्रेम किया करता था। परन्तु जब से, उसने हेर्मिया को देखा उसका दिल बदल गया। यही नहीं, हेर्मिया का पिता भी, डिमिट्रियस पर अभिमान करने लगा।

परन्तु हेर्मिया ने साफ साफ कहा- "मैं डिमिट्रियस से शादी न करूँगी; लिसाण्डर से ही शादी करूँगी।"

उन दिनों, एथेन्स शहर में यह कानून था कि लड़कियाँ पिता द्वारा निश्चित बर से ही शादी करें। पिता की आज्ञा का धिक्कार यदि वे करतीं, तो उनको या तो मरण दण्ड दिया जाता नहीं तो आजीवन अविवाहित, योगिनी बनकर रहना पड़ता।

हेर्मिया के पिता ने राजा से अपनी लड़की के बारे में शिकायत की। "तुम, क्यों नहीं डिमिट्रियस से शादी कर लेती?" राजा ने भी यह सलाह दी। पर हेर्मिया न मानी।

"तुम्हें अपना निश्चय बदलने के लिए चार दिन का समय देता हूँ। अगर तब भी तुम अपने हठ पर रही तो कानून के



अनुसार तुम्हें सजा देनी ही होगी।" राजा ने उनको यह कहकर भेज दिया।

हेर्मिया कुछ न सोच पाई कि क्या किया जाय। तब उसके प्रेमी लिसाण्डर ने एक सलाह दी। "नगर से सात कोस दूरी पर मेरी बड़ी मौसी रहती है। वह बहुत धनी है। मुझे अपना पुत्र समझती है। अगर हम लुके छुपे, जैसे तैसे वहाँ पहुँच गये तो हमारे विवाह में कोई रुकावट न डाल सकेगा। इसलिये कल रात को नगर से एक कोस दूरवाले जङ्गल में चले आओ। मैं तुम्हारी वहाँ प्रतीक्षा कर रहा हूँगा।"

हेर्मिया की सहेली, हेलेना तब भी डिमिट्रियस से प्रेम कर रही थी। उसे इस बात का भी दुख था कि उसका डिमिट्रियस, हेर्मिया से विवाह कर रहा था। उसका दुख कम करने के लिये हेमिया ने उससे कहा-"आज रात को मैं, लिसाण्डर के साथ नगर छोड़कर जा रही हूँ। तब डिमिट्रियस फिर तुमसे विवाह करेगा, दुखी मत हो।" उसने अपनी सहेली से कहा।

हेलेना ने यह बात जाकर डिमिट्रयस से कह दी। हेलेना जानती थी कि ऐसा करने से हेर्मिया की योजना असफल हो सकती थी। पर उस विचारी ने यह भी सोचा कि ऐसा करने से डिमिट्रियस का मन फिर उसकी तरफ़ लगेगा।

उस जङ्गल में जहाँ लिसाण्डर और हेर्मिया ने मिलने की ठानी थी भूतों का राज्य था। उसका एक राजा था और रानी थी। उन दोनों में, कुछ समय से झगड़ा हो रहा था। इसका कारण यों था। भूतों की रानी एक लड़के को पाल रही थी। राजा ने उस लड़के को अपना नौकर बनाने के लिए कहा। रानी ने उस

लड़के को, इस काम पर रखने से इनकार कर दिया।

कुछ भी हो, भूतों के राजा ने अपनी पत्नी का अभिमान चूर करने का निश्चय किया। उसने अपने पक नाम के सेवक को बुलाकर कहा-"अरे, फलानी जगह नीले रङ्ग का फूल है। उसे लाओ। जब रानी सो रही हो तब अगर उस फूल के रस को उसकी पलकों पर लगाया गया, तो नींद से उठते ही वह जिस जन्तु को देखेगी, उसे मोह लेगी। उसका अपमान कर हम उस लड़के को ले लेंगे, जिसे वह पाल रही है। मैं फिर दवा का असर हटा दूँगा।"

फूल लाने के लिए पक निकला। इस बीच भूतों की राजा की जगह डिमिट्रियस और हेलेना आये। यह जानते ही कि हेर्मिया, इस जङ्गल में, आज रात को लिसाण्डर से मिलेगी और उसके साथ चली जायेगी टिमिट्रियस, उनकी योजना को भङ्ग करने आया। उसके पीछे हेलेना भी आई। वे जङ्गल में बहुत देर तक घूमते रहे, पर उनको कहीं हेर्मिया, और लिसाण्डर न दिखाई दिये। यूँ तो डिमिट्रियस खिझा ही हुआ था,



और हेलेना को पीछा करता देख उसकी खीझ और भी बढ़ी। "तुम क्यों शनि की तरह मेरे पीछे चली आ रही हो? जाओ, तुम्हें देखते ही मुझे घृणा आती है।" उसने कहा।

"मैं, तुमसे प्रेम किये बगैर नहीं रह सकती। क्या मैं पालतू कुत्ते के बराबर भी नहीं हूँ?" हेलेना ने कहा।

"अगर तुम इस तरह मेरे पीछे पड़ी रही तो मैं तुम्हारी जान भी ले सकता हूँ, समझे?" डिमिट्रियस भागने लगा।

"मैं मरने के लिए भी तैयार हूँ।" कहती हेलेना उसके पीछे दौड़ी।



भूतों के राजा ने, अदृश्य होकर उन दोनों की बातचीत सुनी। "इस लड़के को सजा देनी पड़ेगी जो एक लड़की को इस प्रकार दुत्कार कर भागा जा रहा है।" उसने सोचा।

इतने में पक फूल लेकर वहाँ आया। भूतों के राजा ने उससे कहा-"अरे इस फूल के रस को रानी की आँखों पर लगाना। वह फलानी जगह सो रही है। एक और बात है, इस जङ्गल में एक लड़का, और एक लड़की घूम रहे हैं। वे ऐथेन्स के हैं, यह उनके कपड़ों से जाना जा सकता है। वे कहाँ सोते हैं, यह पता लगाओ, और जब वह लड़का सोये तो उसकी आँखों पर यह रस लगा देना। वह उठते ही उस लड़की को देखेगा, और कुत्ते की तरह उसके पीछे पीछे घूमेगा। तुम तड़के मुझे मिलना, मजा देखेंगे।"

पक पहले उस जगह गया, जहाँ भूतों की रानी सो रही थी, उसकी आँखों पर फूलों का रस लगाया, फिर वह ऐथेन्सवालों की खोज में निकला। दुर्भाग्य से उसको हेर्मिया और लिसाण्डर एक जगह दिखाई दिये।

वे दोनों जङ्गल में मिले और काफी दुर चले। परन्तु वे रास्ता भटक गये। उन दोनों ने जङ्गल में रात काटनी चाही, हेर्मिया की जगह से कुछ दूरी पर लिसाण्डर लेटा हुआ था। दोनों सो रहे थे। उस समय पक वहाँ आया। उसने सोचा कि उसके मालिक ने इसी जोड़ी बारे में कहा था। वह लिसाण्डर की आँखों में रस लगाकर, अपने रास्ते चला गया।

हेलेना, डिमिट्रियस के साथ न चल सकी। पीछे रह गई और वह उसको

पैदल ही जङ्गल में खोजने लगी। वह ढूँढ़ती ढूँढ़ती उस जगह पहुँची, जहाँ लिसाण्डर सो रहा था। उसने उसे पहचान लिया। यह जानने के लिए कि वह सो रहा था, या डिमिट्रियस द्वारा मार दिया गया था, उसने उसको उठाया। लिसाण्डर ने, आँखें खुलते ही हेलेना को देखा और फूल के रस के प्रभाव के कारण उससे प्रेम करने लगा।

हेलेना, यह देख घबराई। उसने सोचा कि लिसाण्डर उसका परिहास कर रहा था। उसे अपने पर ही चिढ़ आई, वह वहाँ से चली। लिसाण्डर भी उसके पीछे दिवाने की तरह चलने लगा।

इतने में भूतों के राजा को पक की गलती मालूम हो गई। वह घूमता घूमता उस जगह पहुँचा, जहाँ डिमिट्रियस सो रहा था। हेलेना से पीछा छुड़ाकर, डिमिट्रियस हेर्मिया के लिए बहुत देर तक घूमता रहा। धूम घामकर थक-थका गया, और एक जगह सो गया।

यही मौका देख भूतों के राजा ने, डिमिट्रियस के आँखों पर भी फूल का रस लगा दिया। जब उसने आँखें खोलीं, तो उस तरफ हेलेना



चली आ रही थी, उसके पीछे लिसाण्डर भी था।

रस के प्रभाव के कारण, डिमिट्रियस भी हेलेना से प्रेम करने लगा। हेलेना, अपने आँखों और कानों पर विश्वास न कर सकी। जो तब तक हेर्मिया से प्रेम कर रहे थे, उन दोनों को उससे प्रेम करता देख, हेलेना को यह सब कुछ नाटक-सा लगा।

हेर्मिया भी, अपने प्रेमी लिसाण्डर को खोजती वहाँ आई। उसे कुछ समझ में नहीं आया; क्यों लिसाण्डर उसको छोड़कर, हेर्मिया के पीछे लगा हुआ था।

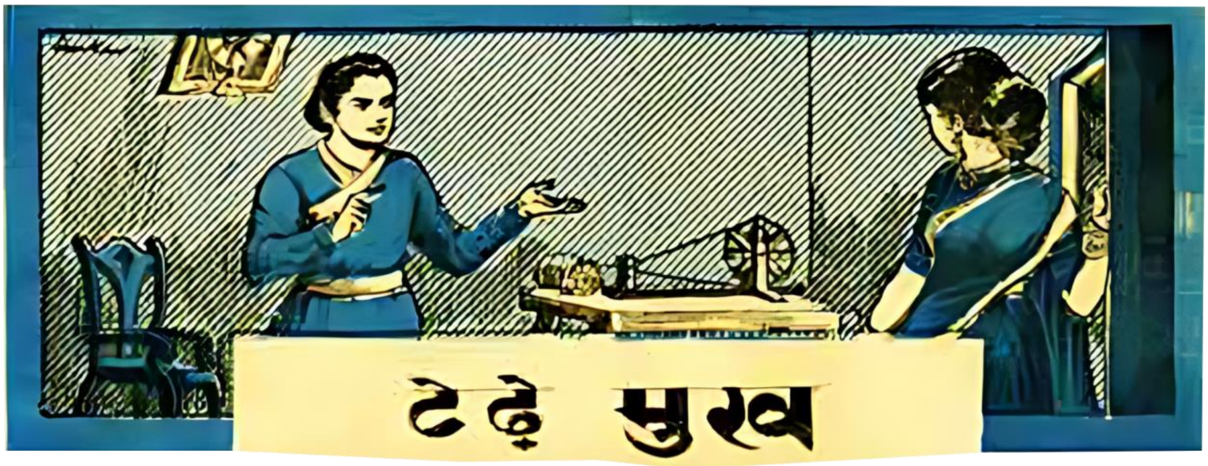
दोनों सहेलियाँ एक दूसरे पर सन्देह करके झगड़ने लगीं। दोनों आदमी हेलेना के लिए आपस में लड़ने लगे। पक ने अपनी माया के प्रभाव से ऐसा किया कि वे दोनों एक दूसरे को न देख पाते थे, न एक दूसरे को पकड़ ही पाते थे।

आखिर सब थक गये; दोनों युवतियाँ और दोनों युवक सो गये। उस समय पक ने आकर लिसाण्डर की आँखों पर लगे रस का असर हटाने के लिए एक और रस लगाया। उसके प्रभाव से लिसाण्डर का हेर्मिया के प्रति प्रेम फिर जाग पड़ा। डिमिट्रियस, फूल के रस के प्रभाव के कारण हेलेना से प्रेम करने लगा। उन दोनों के विवाह की समस्या इस तरह हल हो गई।

और उधर वन में भूतों के राजा की इच्छा भी पूरी हो गई। भूतों की रानी जब सोकर उठी तो उसने बाहर आकर गधे के सिरवाले एक मनुष्य को देखा। और रस के प्रभाव से वह उससे प्रेम करने लगी। वह आदमी एक जुलाहा था, जो उस दिन रात को जङ्गल में फँस गया था। पक ने उस पर गधे का सिर लगा दिया था। सवेरे ही, भूतों का राजा अपनी पत्नी की जगह आया, गधे के सिरवाले आदमी को देखकर उसने हल्ला किया। भूतों की रानी यह देखकर शर्मिन्दा हुई। पति से समझौता करने के लिए, उस लड़के को, जिसे वह पाल रही थी, पति का नौकर बनाने के लिए वह राजी हो गई।

आप यह सन्देह कर सकते हैं कि कहीं ऐसी बातें भी हो सकती हैं। अगर ऐसा लगे कि यह सच नहीं है; गुजरी हुई बात नहीं है, तो यह समझना कि यह एक मनोरञ्जक स्वप्न है।





एक अमीर की एक सुन्दर लड़की थी। सौभाग्य से उसका विवाह सम्बन्ध अच्छे घर में हुआ। वर यद्यपि दूसरे प्रान्त का था, तो भी अमीर और सुन्दर था। लड़की को लड़का और लड़के को लड़की पसन्द आई। इसलिए उन दोनों की धूम धाम से शादी हुई। माँ बाप ने लड़की को उसके ससुराल भेज दिया।

कुछ मास उनकी गृहस्थी खूब आनन्द से चली। एक दिन, पति ने एक चरखा, और टोकरा भर पूनियाँ पत्नी के सामने रखकर कहा-"रोज, सूत कातो, सूत समान होना चाहिये।"

पत्नी ने मुँह लम्बा करके कहा-"क्या है! क्या मुझे रोज चरखे पर सूत काटना होगा?"

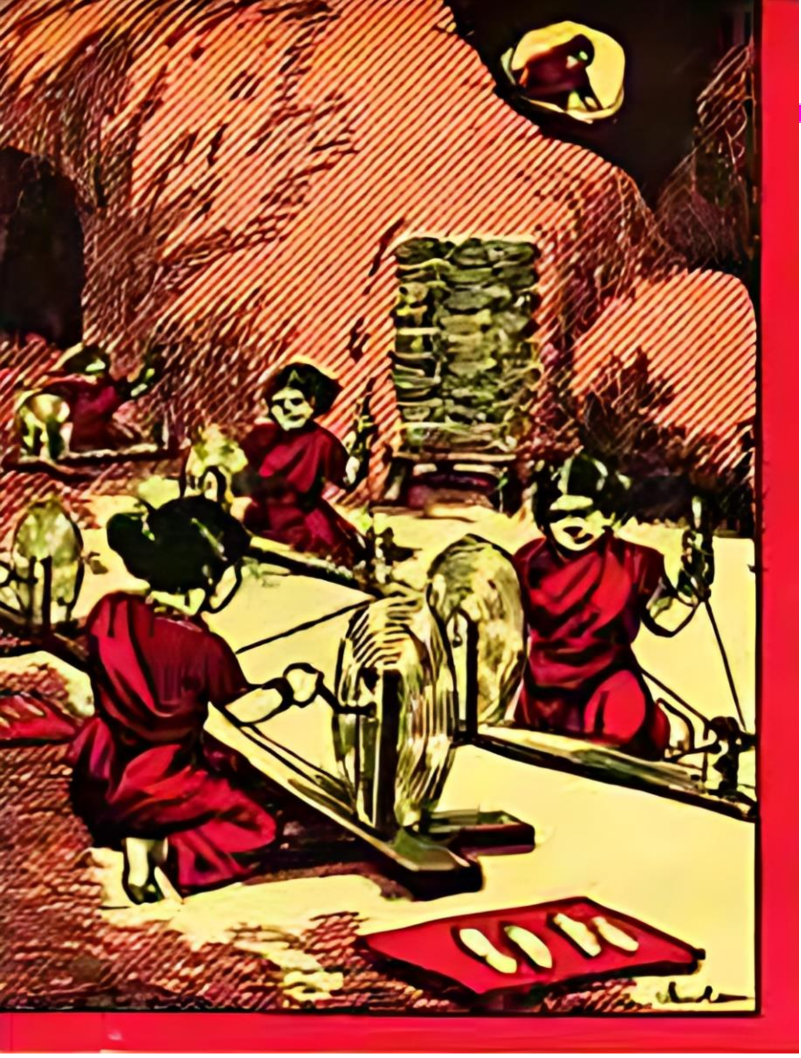
"हाँ! मुझे साल में दो जोड़ी धोती और चादर तेरे काते हुये सूत से बनवाने हैं।" पति ने कहा।

"मैं तो सूत कातना नहीं जानती।" पत्नी ने कहा।

अगर कामकाजी स्त्री कहे कि सूत कातना नहीं आता है तो पति विश्वास नहीं करता। उसका तो यही ख्याल रहता है कि आलस्य के कारण इधर उधर के बहाने पत्नी बना रही है।

"बस करो, ऊटपटाङ्ग बातें न करो, रोज छः चैले कातकर दिखाओ।" पति यह कहकर चला गया।

पत्नी चिन्तित हो, चरखे के सामने बैठकर, सूत कातने का प्रयत्न करने लगी। अभ्यास था नहीं, इसलिए कहीं सूत मोटा निकलता, तो कहीं पतला। कहीं गाँठ गाँठ



सा। शाम को जब पति वापस घर आया, तो वह एक तोला सूत भी न कात सकी।

पति, उस तागे को देखकर आग-बबूला हो उठा।

"मजाक है। अगर तुमने ऐसा ही किया, तो मैं तुम्हें छोड़कर, किसी और से शादी कर लूँगा। क्या समझ रखा है? मैं कल सवेरे काम पर शहर जा रहा हूँ। दस दिन बाद वापस आऊँगा। इस बीच तुम टोकरा भर पूनियाँ कातो। अगर तुमने यह न किया तो मैं वही करूँगा जो मैने कहा है।" पति ने पत्नी से कहा।

पत्नी को बड़ी फिक्र हुई। उसके मायके में चरखा ही नहीं था, इसलिए उसने कभी सूत न काता था। परन्तु उसके पति के प्रान्त में हर स्त्री सूत कातती थी। इसलिए यहाँ के लोग उस स्त्री का आदर नहीं करते थे, जो सूत कातना नहीं जानती थीं। पति के जाने के बाद, पत्नी अपने मकान के बगलवाले मैदान में जाकर एक पत्थर पर जा बैठी।

कुछ देर बाद, उसे जाने कहीं से कुछ बातें और हँसना सुनाई दिया। चारों और जो देखा, तो कहीं कोई न था। जब उसने गौर किया, तो ऐसा लगा कि वे बातें और हँसी, उस पत्थर के नीचे से ही आ रही थीं।

पत्नी पत्थर पर से उठी। बहुत मुश्किल से, उसने पत्थर को एक तरफ हटाया। उसके नीचे उसको ऐसा छेद दिखाई दिया जिसमें से वह अन्दर जा सकती थी। वह उस छेद में गई। अन्दर एक विशाल कमरा था। उस कमरे में छः बौनी स्त्रियाँ बैठी थीं। वे देखने में छः सात वर्ष की लड़कियों की तरह थीं। सब के सामने चरखे थे। वे स्त्रियाँ हवा

की तरह चरखे चला रही थीं। जल्दी जल्दी पूनियाँ कात रही थीं। और मकड़ी के जाल की तरह महीन सूत निकालकर एक तरफ इकट्ठा कर रही थीं।

उन छहों स्त्रियों के मुख एक तरफ झुके हुए-से थे। यह उस पत्नी ने देखा। वे यद्यपि इतनी तेजी से सूत कात रही थीं, फिर भी वे आपस में बातें कर रही थीं, और टेढ़े मुख करके हँस रही थीं। पत्नी ने उनसे कहा-"आप कौन हैं, मैं नहीं जानती। पर आपका कातना देखकर मुझे आश्चर्य हो रहा है। आपके हुनर में, यदि सौवाँ हिस्सा भी मैं जानती, तो मुझे फिक्र न होती।" कहती पति की बातें याद करके वह फूट-सी पड़ी।

उन छहों स्त्रियों ने चरखा चलाना छोड़कर पूछा-"क्या आपत्ति आ पड़ी है तुम पर?"

उसने अपने पति की शर्त के बारे में उन्हें बताकर कहा-"अगर उनके घर आने से पहले टोकरा भर पूनियाँ न कात डाली, तो मेरी खैर न रहेगी, आगे भगवान जाने।"

उन स्त्रियों ने कहा-"इतनी छोटी-सी बात पर क्यों चिन्ता करती हो? हम



तुम्हारे लिये कात देंगी। तुम्हारे पति के आने के दिन, अगर सवेरे तुमने हमें आवाज दी, तो हम देखते देखने तुम्हारा काम कर देंगी। हमें जरा अपने घर एक दिन खाना दे देना। बस।"

पत्नी ने वही किया। पति के आने के दिन, उन्होंने बहुत-सा महीन सून निकाल कर वहाँ ढेर लगा दिया।

पति आया। टेढ़े मुखवाली स्त्रियों को देखकर उसने पूछा-"ये कौन हैं?"

"हमारे पड़ोसी हैं। मेरी मदद के लिये आई हैं। भोजन करके मैंने जाने के लिये कहा है।" स्त्री ने कहा।

फिर थोड़ी देर बाद सब भोजन के लिये बैठे। जब वे स्त्रियों हँसती, या बातें करती, तो मुख एक तरफ मुड़ जाता । यह देख पति ने कहा-" क्यों आप सब के मुख, इस तरह एक तरफ मुड़ गये हैं? क्या जन्म से ही ऐसे हैं, या किसी कारण ऐसे हो गये हैं?"

"हम, सवेरे से रात होने तक सूत कातती हैं.... कातते कातते, हमारे मुख टेढ़े हो गये हैं। इससे बढ़कर और कोई कारण नहीं है।" उन स्त्रियों ने कहा।

उनके जाने के बाद पति ने पत्नी का मुँह ध्यान से देखा। उसका सुन्दर मुँह था, और मुख ऐसा था मानों किसी ने गढ़ कर बनाया हो।

"अब तक जो काता सो काता, अब तुम चरखे के सामने मत बैठो।" कहते हुए पति ने चरखा ले जाकर कहीं रख दिया।

"हो भला भगवान का" कह कर पत्नी ने लम्बा निश्वास छोड़ा।



सच्चा सन्यासी

एक देश के राजा को एक बार बड़ी जबर्दस्त बीमारी हुई। उसने प्रतिज्ञा की कि यदि उसकी बीमारी ठीक हो गई तो नगर के सन्यासियों को एक एक सोने की मोहर देगा। कुछ दिनों बाद उसकी बीमारी ठीक हो गई, वह स्वस्थ हो गया। उसने अपने एक विश्वासपात्र नौकर को बुलाकर, उसको पाँच हजार मुहरें देकर कहा-"अरे, तुम शहर में जाओ, जहाँ जहाँ जो जो सन्यासी मिले उसे एक एक मोहर दे देना।"

नौकर नगर में शाम तक घूमता रहा। राजा के पास आकर, मोहरों की थैली सामने रखकर उसने कहा-"सारा शहर छान डाला, पर कहीं भी एक सन्यासी तक नहीं मिला।"

नौकर की बात सुनकर राजा का पारा चढ़ गया। उसने कहा-" इतने बड़े शहर में कहीं तुझे कोई सन्यासी ही नहीं दिखाई दिया? मैंने सुन रखा है कि शहर में चार-पाँच हज़ार सन्यासी हैं।"

नौकर ने विनयपूर्वक कहा-"क्षमा कीजिये। सन्यासी को पैसा नहीं लेना चाहिए। जो पैसा लेता है, वह सन्यासी नहीं होता।"



शिकारी कुत्ते- मामूली कुत्ते

एक गड़रिये के पास एक शिकारी कुता था। वह मालिक के साथ भेड़-बकरियों के साथ घूमता रहता। गड़रिये की पत्नी जब कभी पति के लिए, गाँव से भोजन लाती, तो कुत्ते को देखकर नाक भौं चढ़ाती। कहा करती-"रोज, जितना एक आदमी खाना खाता है, इसे उतना खाना चाहिए। इसे छोड़कर क्यों नहीं दो-चार मामूली कुत्ते रख लेते है? वे थोड़ा खाकर, भेड़-बकरियों की रखवाली करेंगे।"

पत्नी के बहुत हल्ला करने पर, गड़रिये ने तङ्ग आकर शिकारी कुत्ते को भगा दिया और चार मामूली कुते ले आया। पत्नी खुश हुई। कहीं कुछ आहट होती, तो चारों कुत्ते गला फाड़कर भोकते।

एक रात, गड़रिया गहरी नींद में था कि एक भेड़िया, भेड़ों के झुण्ड के पास आया। भेड़िये को देखते ही, चारों कुत्ते दुम दबाकर गाँव की ओर भाग गये।

भेड़िया झुण्ड में जा घुसा, भेड़ों को खाकर चलता हुआ।





[६]

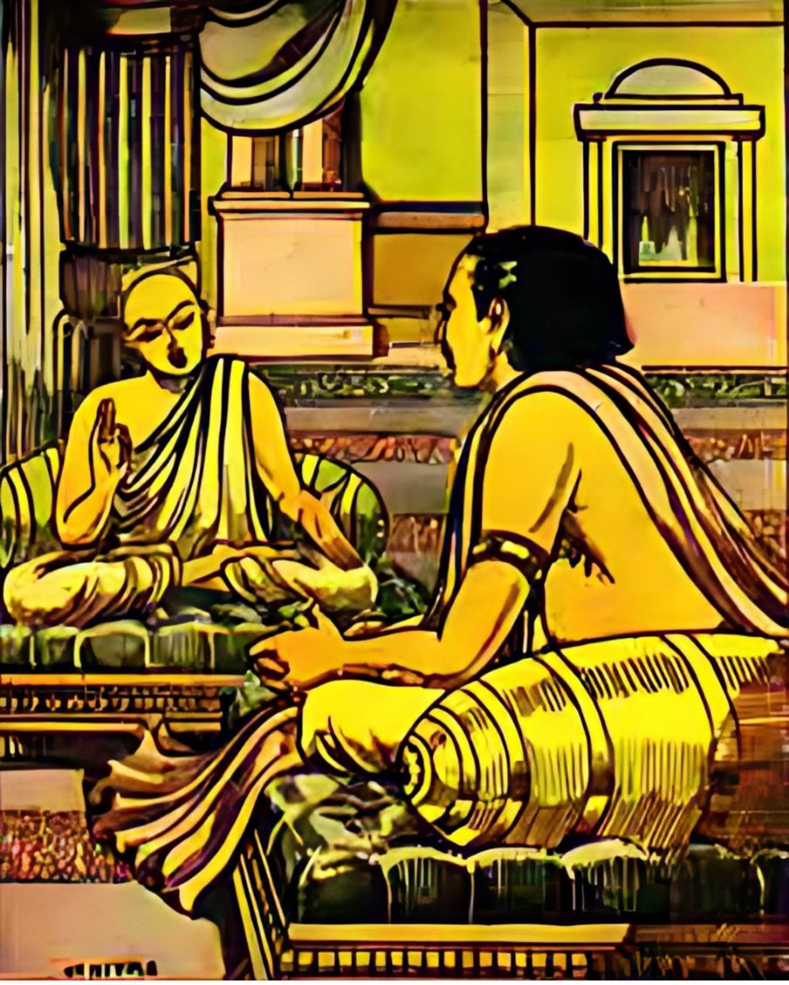
जब यह मालूम हुआ कि राजा बिम्बसार, बुद्ध के उपदेश सुनकर उनका शिष्य बन गया है, तो राजगृह के लोग पूछने लगे-"कौन हैं ये बुद्ध? ये क्या उपदेश देते हैं? निर्वाण का क्या मतलब है?" क्योंकि उनके प्रश्नों का ठीक उत्तर देनेवाला वहाँ

कोई न था, इसलिए वे बारह मील चलकर, बुद्ध के बिहार के पास जाने लगे। रोज आने जानेवालों की भीड़ बनी रहती। दूर दूर से लोग आते।

बिम्बसार ने सोचा कि वर्तमान स्थल, इष्टवन, जहाँ बुद्ध रह रहे थे, काफी दूर हो गया था और उसको तब तक शान्ति न मिलती जब तक वह बुद्ध के समीप, रोज काफी समय व्यतीत न करता। इसलिये उसने उद्यान को, बुद्ध-बिहार बनाने का निश्चय किया। इस उद्यान के चारों ओर बाँस थे, इसलिये इस बन का नाम बेलुवन पड़ा।

बिम्बसार ने यह उद्यान शास्त्रोक्त रीति से बुद्ध को दिया। यह बुद्ध के निवास स्थलों में सब से अधिक प्रसिद्ध है।

राजगृह के पास ही, कोलितम और उपतिष्यम, नाम के दो ब्राह्मण ग्राम थे।



उनका परिपालन, कोलित और उपतिष्य नाम के दो क्षत्रिय किया करते थे। उन दोनों कुटुम्बों में सात पीढ़ियों से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध चले आते थे। कोलित के पास पाँच सौ रथ थे और उपतिष्य के पास पाँच सौ सोने की पालकियाँ। उनमें से जो एक करता दूसरा भी करता। दोनों एक ही तरह के मनोरञ्जन किया करते। पर वे दोनों जन्म परम्परा से ऊब गये थे। वे समझ गये थे कि सुखों में समय बिता देने से न निर्वाण मिलेगा, न मुक्ति ही। जीवन का उद्देश्य वे न समझ पाये थे।

इसी समय राजगृह में, सङ्ग नाम का प्रसिद्ध पारिब्राजक रहा करता था। कोलित और उपतिष्य ने कुछ समय तक इस सङ्ग की सेवा शश्रुषा की। पर सङ्ग उनको मुक्ति का मार्ग न दिखा सका। इसके बाद उन दोनों ने कई देशों में भ्रमण किया, और जो कोई मिलता, उससे अनेक प्रश्न करते। एक भी उनका सन्देह निवारण न कर सका। इसलिये वे राजगृह वापस आ गये।

इस समय बुद्ध वेलुवन में रह रहे थे। इस बीच, अश्वाजी नाम का बुद्ध का शिष्य, देश देशान्तर में बुद्ध के अवतरण के बारे में प्रचार करके राजगृह वापस आया। आने के एक दिन बाद वह भिक्षापात्र लेकर घर घर घूमने लगा। यूँ घूमता घूमता वह उपतिष्य के पास आया।

उपतिष्य, अश्वाजी को देखकर सन्तुष्ट हुआ। उसको वह अपने घर भिक्षा के लिये निमन्त्रित करके ले गया। अश्वाजी से कुछ देर बातचीत करने के बाद उपतिष्य ने कहा- "स्वामी, आपकी बातों से ऐसा मालूम होता है, जैसे आपको मोक्ष

का मार्ग पता हो, जीवन मुक्ति का ज्ञान हो। आपके गुरु कौन हैं?"

"मेरे गुरु गौतम बुद्ध हैं।" अश्वाजी ने उत्तर दिया।

"उनके क्या सिद्धान्त हैं?" उपतिष्य ने पूछा।

अश्वाजी को सन्देह हुआ कि शायद उपतिष्य बुद्ध का विरोधी है। उसने कहा-"मैं, अभी अभी ही शिष्य हुआ हूँ। धर्म तो निस्सीम है। मैं कैसे उसके बारे में विस्तार से कह सकता हूँ?"

"कोई बात नहीं। मैं तो सत्य का अन्वेषण कर रहा हूँ। मुझे कुछ रास्ता मिल गया तो मैं स्वयं उस पर चला चलूँगा। अगर आप मुझे एक सत्य बतायें तो उनमें से सैकड़ों, हज़ारों सत्यों का मैं अनुमान कर सकता हूँ।" उपतिष्य ने कहा।

तब अश्वाजी ने यह श्लोक सुनाया:-

"ये धम्म हेतुपभवा,

येसन हेतु ननोगतो,

अहा देखन च यो निरोधो,

एवन् व्यदि महासमनी।

(हर चीज़ किसी कारणवश पैदा होती है। तत्वज्ञों ने यह कारण



बताया है। इन सबको (जन्म परम्परा को) रोका जा सकता है, यही महाश्रमण (बुद्ध) ने बताया है।

यह सुनते ही उपतिष्य अत्यन्त आनन्दित हुआ। और अवाजी का आलिङ्गन करके उसने कहा- "तुम्हारी बातें सुनकर मुझे सन्तोष हुआ है। बुद्ध में मुझे विश्वास हो गया है। वे कहाँ हैं?"

अश्वाजी से बुद्ध के रहने की जगह मालूम करके, उपतिष्य ने कोलित के पास जाकर कहा- "मित्र, मुझे निर्वाण का मार्ग मिल गया है।" उसने उसे वह



श्लोक सुनाया, जिसको अश्वाजी ने उसे सुनाया था।

कोलित को भी यह विश्वास हो गया कि बुद्ध जन्म विमुक्ति के बारे में उपदेश दे सकते थे। दोनों मिलकर अपने प्रथम गुरु सङ्ग के पास गये। सङ्ग ने उनका कहना सुना-" मेरा बुद्ध के पास आना सम्भव नहीं है। मेरी कीर्ति सारे जम्बु द्वीप में है, मुझ जैसा किसी और का शिष्य कैसे हो सकता है?"

परन्तु सङ्ग के साथ रहनेवाले पाँच सौ शिष्य बुद्ध के दर्शन करने के लिये निकल पड़े। यह देख सङ्ग के आँखों में तरी आ गई। इसलिये, उसके आधे शिष्य उसी के साथ रह गये। शेष, कोलित और उपतिष्य के साथ बुद्ध को देखने के लिए, तुरन्त चले गये।

वे जब बिहार में पहुँचे, तो बुद्ध उपदेश कर रहे थे। कोलित और उपतिष्य को दूरी पर देखते ही कहा-"मेरे प्रधान शिष्य आ रहे हैं।"

उन्होंने बुद्ध को प्रणाम करके तत्वज्ञान प्रदान करने की प्रार्थना की। बुद्ध ने उनसे कहा-" मेरा आश्रय लीजिये। कष्टों से विमुक्त होने के लिये ब्रह्मचर्य का पालन कीजिये। मैं आपको मोक्ष मार्ग के बारे में उपदेश दूँगा।"

इसके बाद, उपतिष्य, कोलित और सङ्ग के दो सौ पचास शिष्य बौद्ध हो गये। कोलित, अपना नाम बदलकर मुगलन हुआ और उपतिष्य सेरित हुआ। ये दोनों बुद्ध के प्रधान शिष्य थे।

इसके कुछ दिनों बाद पूर्णिमा की चान्दनी में, एक बड़ी सभा हुई। इस सभा की विशेषता यह थी कि उस सभा में उपस्थित लोग बिना निमन्त्रण के ही

एकत्रित हुये थे। उसमें भाग लेनेवाले सब अर्हत श्रेणी के थे। उस सभा में बुद्ध मे अपने शिष्यों से इस प्रकार कहा।

"कोई पाप न करो। प्रत्येक सद्‌गुण का पालन करो। मन को स्वाधीन रखो, यही बुद्ध का अनुशासन है।"

बुद्ध वेलुवन में जब थे, तभी कपिलवस्तु मैं राजा शुद्धोधन को मालूम हुआ कि.. सिद्धार्थ बुद्ध हो गये थे। उसने एक उत्तम क्षत्रिय के साथ हजार आदमियों को भेजा, और अपने पुत्र के लिए यह सन्देश उन्हें दिया:

"मैं तुम्हें देखना चाहता हूँ। इसलिए तुम चले आओ। सब तुम्हारा उपदेश सुन रहे हैं। पर तुम्हारे पिता व अन्य निकट बन्धुओं को तुम्हें सुनने का मौका नहीं मिला है। तुमको देखे कितने ही वर्ष हो गये हैं।"

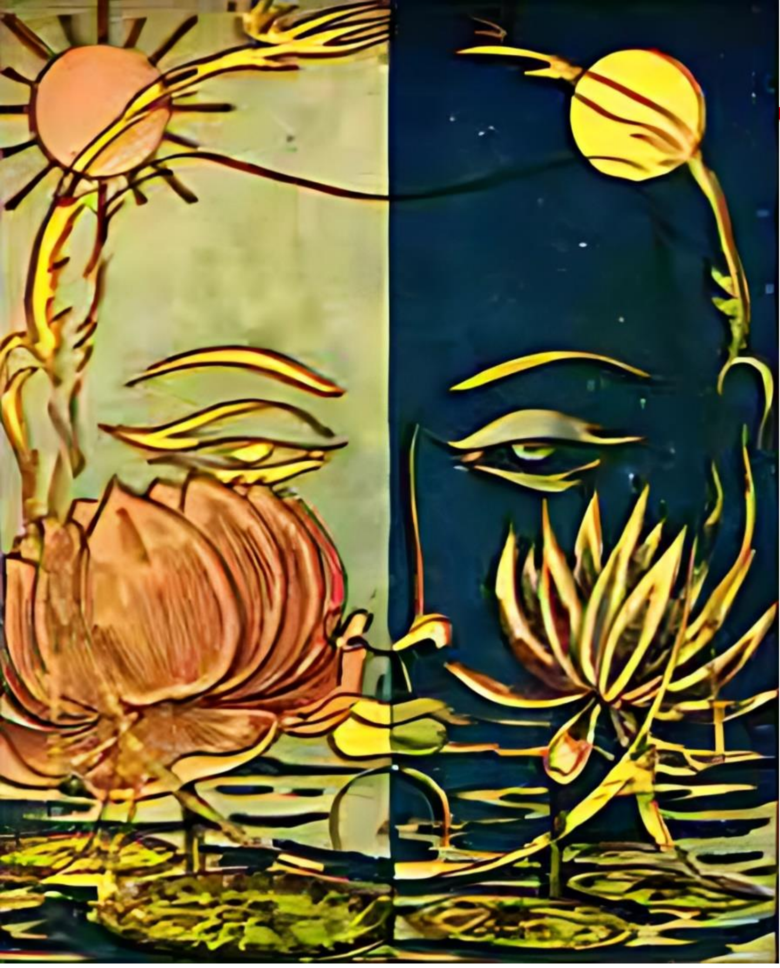
बुद्ध के लिए वह सन्देश लेकर जब शुद्धोधन का दूत, बिहार के पास पहुँचा तो उस समय बुद्ध सभा में उपदेश दे रहे थे। वह क्षत्रिय और



उसके साथ आये हुए हजारों आदमी, बुद्ध का उपदेश सुनकर बौद्ध हो गये। उन्होंने शुद्धोपन का सन्देश बुद्ध को नहीं दिया।

जब भेजे गये लोग वापस न आये, तो एक और दूत को बहुत से आदमियों के साथ शुद्धोधन ने भेजा। परन्तु वे भी पहले गये लोगों की तरह बुद्ध के शिष्य हो गये और बिहार में रहने लगे।

शुद्धोधन ने इस प्रकार सात और दुत भेजे, सब बुद्ध के शिष्य हो गये। कोई



बापस न गया और किसी ने भी शुद्धोधन का उपदेश बुद्ध को न दिया।

क्योंकि वे सब मेरे विश्वासपात्र न थे, इसीलिये ही उन्होंने मेरी आज्ञा का पालन नहीं किया, यह सोच अपने विश्वासपात्र कालदाय को बुलाकर कहा-"मैं मरने से पहले अपने लड़के को देखना चाहता हूँ। उसको बुला लाने के लिए, मैंने नौ दूतों को नौ हज़ार आदमियों के साथ भेजा। पर एक भी वापस न आया। क्या तुम जाकर उससे कहोगे कि मैंने उसे बुलाया है?"

कालदाय भी बुद्ध के पास गया और उनके उपदेश सुनकर उनका शिष्य हो गया। फिर एक सप्ताह बाद वसन्त ऋतु शुरु हो गई। जहाँ देखो वहीं हरियाली थी। जगह जगह फूल खिले हुए थे। बुद्ध के लिए, अपने बन्धुबान्धवों को देखने का यही अच्छा मौका जान, कालदाय उनके पास जाकर राजगृह और कपिलवस्तु के मार्ग की शोभा का वर्णन करने लगा। बुद्ध ने थोड़ी देर वह वर्णन सुनकर पूछा-"यह सब वर्णन मुझे क्यों सुना रहे हो?"

"कुछ भी नहीं। सूर्य के लिए जिस प्रकार पद्म, चन्द्रमा के लिए कमल जिस प्रकार प्रतीक्षा करते हैं, उसी प्रकार आपके पिता और माता आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

बुद्ध ने थोड़ी देर सोचा। फिर यह निर्णय करके कि जन्मभूमि जाने का समय आ गया था उससे कहा-"अच्छा, तो कल सवेरे चलेंगे।"

अगले दिन बुद्ध कपिलवस्तु के लिए निकल पड़े। उनके साथ अङ्ग, मगध देश के दस हजार शिष्य और कपिलवस्तु के

दस हजार शिष्य भी निकले। ये रोज सोलह मील चलकर दो महीने बाद कपिलवस्तु पहुँचे।

बुद्ध के कपिलवस्तु के पहुँचने के कुछ समय पूर्व, कालदाय शुद्धोधन के घर गया। शुद्धोधन उसको देखकर बहुत आनन्दित हुआ। शुद्धोधन ने उसको भोजन दिलवाया। परन्तु कालदाय उस भोजन को भिक्षापात्र में डालकर जाने के लिए उठने लगा।

"क्यों जा रहे हो? भोजन करो।" शुद्धोधन ने कहा।

"नहीं, में अपना भोजन ले जाकर बुद्ध को दूँगा।" काल्दाय ने कहा।

"बुद्ध कहाँ है?" शुद्धोधन ने पूछा।

"यहाँ आ रहे हैं। रास्ते में हैं।" कालदाय ने कहा।

"बुद्ध को मैं और भोजन दिलवाऊँगा। तुम इसे खाकर जाओ।" शुद्धोधन ने कहा।

कालदाय ने भोजन किया। शुद्धोधन ने उसके भिक्षापात्र को सुगन्धित जल से धुलवाया। उसमें उत्तम भोजन रखवाकर कालदाय द्वारा बुद्ध के पास भेजा।



उस दिन बुद्ध ने अपने पिता द्वारा भेजा हुआ भोजन ही खाया।

फिर शुद्धोधन ने बुद्ध के रहने के लिए निग्रोध वन को तैयार करवाया। निग्रोध नाम के शाक्य राजा ने उसे तैयार करवाया था।

बुद्ध जब कपिलवस्तु नगरी के द्वार पर पहुँचे तो उनका स्वागत करने के लिए एक जुलूस निकला, जिसके सामने पाँच सौ सोलह सत्रहवें वर्ष के बाल-बालिकायें थीं। उसके पीछे बारह वर्ष के राजकुमार और राजकुमारियाँ थीं। उनके पीछे एक सौ

साठ हजार आदमी, परिवार के साथ चन्दन पुष्प आदि, लेकर राजा स्वयं निकले। इस जुलूस के साथ बुद्ध उद्यान में पहुँचकर एक ऊँचे आसन पर बैठे। उनके बीस हजार शिष्य उनके चारों ओर बैठे थे। बुद्ध के दर्शनार्थ आये बड़े शाक्यों ने छोटों से कहा-" तुम बुद्ध के पाँव छुआ।" वे स्वयं अलग बैठ गये। वे बड़े थे, चाचा, ताऊ , बाबा, दादा आदि, सम्बन्ध मैं होते थे, इसलिये उन्होंने बुद्ध के सामने साष्टाङ्ग करना जरूरी न समझा।

बुद्ध उठकर खड़े हो गये। उस समय, वहाँ उपस्थित लोगों ने दो बुद्धों को अलग अलग देखा, उनके शरीर से छः रङ्गों की किरणों का निकलता देखा। फिर उन्होंने अनागत या वृतान्त नाम के मैत्री बुद्ध की जीवनी सुनाई।

बुद्ध का उपदेश समाप्त होते ही शुद्धोपन महाराजा उठे। अपने पुत्र के सामने तीन बार साष्टाङ्ग प्रणाम करके उन्होंने कहा-"बेटा, बुद्ध भगवान, मैं पहले तुझे दो बार साष्टाङ्ग प्रणाम कर चुका हूँ। तू यद्यपि मेरा लड़का है, पर मैं आज से तुझे अपना लड़का नहीं मानता, क्योंकि मैं तेरे दास होने लायक भी नहीं हूँ। में जानता हूँ यदि मैं तुझे सारा राज्य भी देना चाहूँ, तो वह सब तेरे लिए राख के समान है।"

शुद्धोधन के कहते ही बड़े लोगों का घमण्ड खतम हुआ। उन्होंने भी बुद्ध को साष्टाङ्ग नमस्कार किया। सब के सन्देहों का निवारण हो गया।

इस प्रसङ्ग में, बुद्ध ने विश्वन्तर नाम की जातक कथा सुनाई।

(अभी है)





एक दिन एक जमीन्दार के पास एक अजीब आदमी आया। उसके कपड़े फटे हुए थे। उसके कान खड़े-से लगते थे।

जमीन्दार के नौकरों ने उससे पूछा- "तुम कौन हो? तुम्हें क्या काम है?"

"मैं जादूगर हूँ। हुजूर को जादू दिखाकर कुछ ईनाम पाना चाहता हूँ।" अजीब आदमी ने कहा।

नौकर ने उसका विश्वास न किया। क्योंकि जादू करनेवालों के पास एक थैला, और जादू का डण्डा होता है। वे पगड़ी बाँधकर बड़ी शान से अक्सर आते हैं। इस अजीब आदमी को देखने से जादूगर नहीं मालूम होता था।

"तू भला क्या जादू करेगा? हुजूर तुम्हें पैसा तो क्या देंगे, खूब पिटवाकर चलता करेंगे। जा, जा।" कहकर नौकरों ने उसे भेजना चाहा।

"अरे, मार तो मुझे नहीं पड़ेगी। हुजूर से जाकर कहिये कि जादूगर आया है।" उस आदमी ने कहा।

नौकरों ने वही किया। अन्दर जमीन्दार अपने मित्रों और नौकरों के साथ बैठा हुआ था। सब के मनोरञ्जन के लिए, जादुगर को भेजने के लिए कहा।

उसने जादूगर से पूछा-"तुम क्या जादू करते हो? हमने बड़े बड़े जादूगरों के खेल देखे हैं। अगर कोई नया खेल जानते हो, तो दिखाओ, नहीं तो अपना रास्ता नापो। अगर कोई मामूली खेल दिखाना हो, तो हम देखने के लिए तैयार नहीं हैं।"

"हुजूर देखें तो, मेरे खेल बहुत नये हैं।" कहते हुए जादूगर ने घास के तीन

टुकड़े चुनकर लिए "मैं, इन्हें अपनी हथेली पर रखकर फूकूँगा, इस तरह फूकूँगा कि बीच का ही उड़ेगा।"

"यह तो मुश्किल बात है, करो, देखें तो।" जमीन्दार ने कहा। जादूगर ने बायें हाथ में तीनों टुकड़ों को रखा, अपने दायें हाथ से दोनों तरफ के टुकड़ों को दबाकर बीच के टुकड़े को फूँका। वह उड़ गया।

"अरे भाई तुम्हारा खेल भी खूब है। यह कौन नहीं कर सकता?" जमीन्दार के एक मित्र ने कहा।

"अच्छा तो आप कीजिये तो सही।" जादूगर ने कहा।

जमीन्दार के मित्र ने, जादूगर की तरह हथेली पर टुकड़ों को रखा, उनमे से दो को दायें हाथ से दबाया। यकायक बिजली कौधी, आँखें चौंधिया गई। जब उन्होंने आँखें खोलीं तो उसकी हथेली नीचे गिर गई थी। सब को अचरज हुआ।

"हुजूर, गौर फरमाइये, आप मेरे कान तो देख ही रहे हैं, मैं इनमें से एक को हिलाऊँगा।"

"यह तो मुश्किल है। करके तो दिखाओ।" जमीन्दार ने कहा।

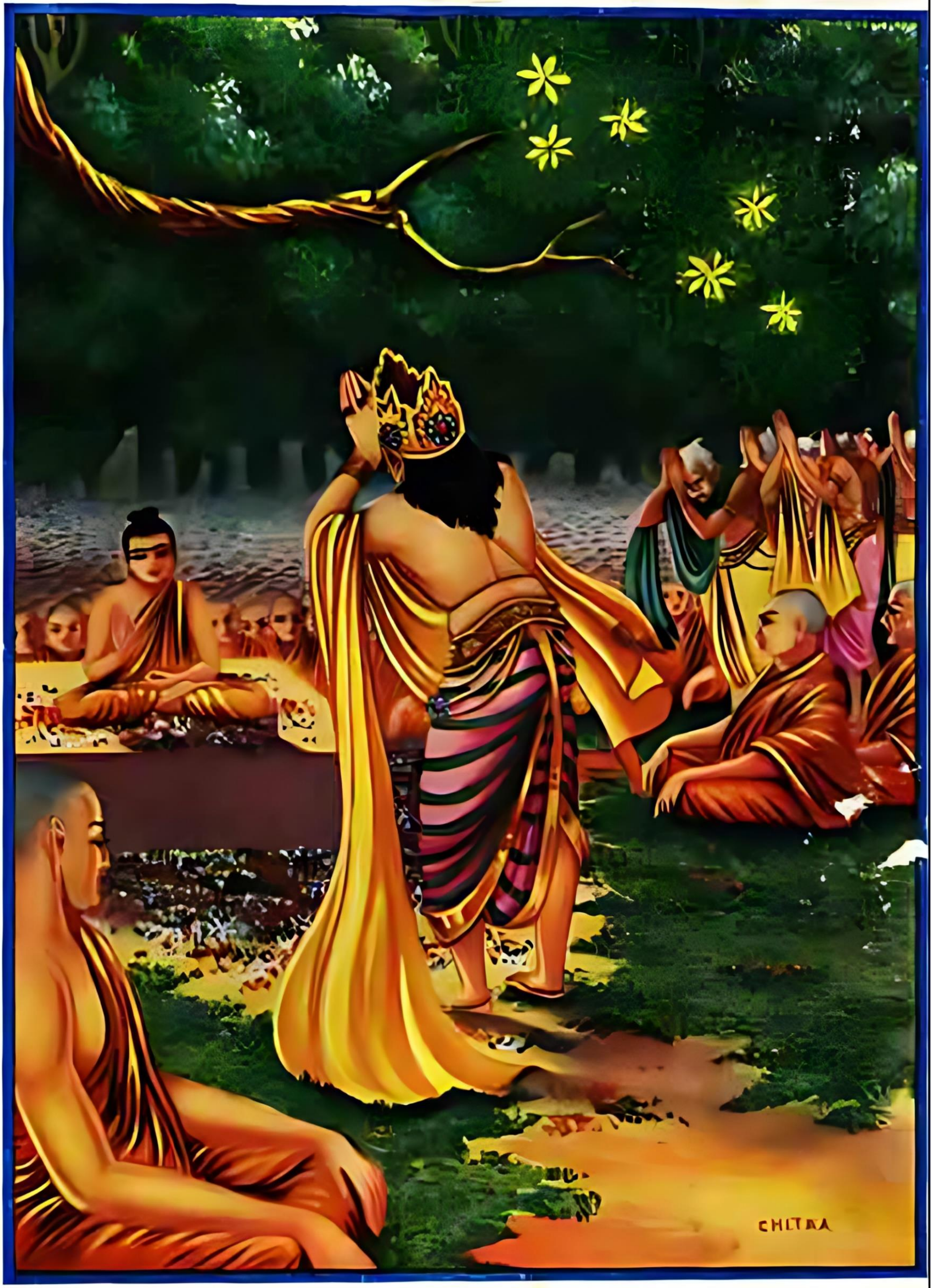
तुरन्त जादूगर ने अपने दायें हाथ में कान पकड़कर; उसे हिलाया। सब हँसे। जो अपना दायाँ हाथ खो बैठा था, उसे गुस्सा आया।

उसने कहा-"यह भी कोई हुनर है?" उसने भी अपना कान पकड़कर हिलाया। फिर बिजली चमकी और उसका कान टूटकर हाथ में गिर गया।

जमीन्दार ने जादूगर के चातुर्य की प्रशंसा करके उसको ईनाम दिया। जादूगर ने जमीन्दार के मित्र के हाथ और कान को

यथास्थान लगा दिया। फिर वह चला गया।




CHITRA